

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

आठवाँ भाग

(संशोधित संस्करण)

अरण्य संवाद

प्रकाशक—

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

२५ रामतीर्थ नगर, लखनऊ

द्वितीयावृत्ति] सन् १९५८ [मूल्य १)

प्रकाशक—

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

२५ रामतीर्थ नगर, लखनऊ



मुद्रकः—

शिवशंकर भार्गव,

फाइन प्रेस, १४ हीवेट रोड,

लखनऊ

निवेदन

परम हर्ष का विषय है कि स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के इस भाग 'अरण्य-संवाद' के साथ राम के समग्र ग्रन्थ का यह द्वितीय संस्करण पूर्ण होता है। पहले यह स्वामी रामतीर्थ ग्रन्थावली के नाम से प्रकाशित हुआ था। इसके २८ भाग थे। और यह संस्करण लेख व उपदेश के नाम से कुल १४ भागों में समाप्त हुआ है। इसके १३ भागों में लेख व उपदेश हैं तथा १४ वें भाग में राम का बृहद् जीवन चरित्र 'स्वामी राम-जीवनकथा' के नाम से प्रकाशित हुआ है। अब स्वामी राम का ऐसा कोई लेख व उपदेश नहीं है, जो इस समग्र-ग्रन्थ-माला में न आ गया हो। बहुत दिनों के परचात् अनेक विघ्नबाधाओं का सामना करते हुए हम इस संस्करण को समाप्त कर सके हैं।

सभी राम प्रेमियों से हमारा सानुरोध आग्रह है कि वे सदा की भाँति इस अनुपम साहित्य के प्रचार में हमारा हाथ बटायें। जितनी जल्दी यह संस्करण समाप्त होगा त्योंही हम और भी सुन्दर रूप में इसका तृतीय संस्करण प्रकाशित करने का विचार करते हैं। अतः एक बार पुनः हम स्वामी राम के पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे भरसक इन पुस्तकों के प्रचार में हमारी सहायता की अनुकम्पा करें। हरि ॐ

रामेश्वरसहायसिंह
एम० एल० ए०
अवैतनिक मन्त्री

विषय-सूची

आवश्यकता

आवश्यकता है—
किसकी ! सुधारकों की—

दूसरों को सुधारनेवालों की नहीं,
किन्तु अपने आपको सुधारनेवालों की।
विश्वविद्यालय के उपाधिधारी सज्जनों की नहीं,
किन्तु परिच्छिन्न भाव के विजेताओं की।
आयुः—दिव्यानन्द भरा तारुण्य,
वेतन—ईश्वरत्व !
शीघ्र निवेदन करो।
किससे ? विश्वनियन्ता से,
अर्थात् अपनी ही आत्मा से,
दासोऽहं भरी दीनता से नहीं,
किन्तु निश्चयात्मक निर्णय और अधिकार के साथ।

स्वामी राम



स्वामी रामतीर्थ



❀ अरण्य-संवाद ❀

संख्या (१)

सभ्यता

राम सनोवर और देवदार वृक्षों के तले ठण्डे पत्थर के तकिये के सहारे, कोमल बालू के बिछौने पर एक पाँव दूसरे पर रक्खे हुए निश्चिन्त चित्त से ताजी हवा का पान कर रहा था, पूर्णानन्द, उज्ज्वल प्रकाश ! इधर ॐ का उच्चारण, उधर उसी स्वर में निर्झर की कलकल ध्वनि ! ऐसे समय राम से किसी दर्शक ने, एक सभ्यतानुरागी ने कुछ व्यंग, कुछ हँसी में कहा—

"आप एशियायी अकर्मण्यता यहाँ अमरीका में क्यों फैला रहे हैं ? उठिये और कुछ भला काम कीजिये ।"

राम—ऐ मेरे प्यारे आत्मस्वरूप ! भलाई करने की बात करते हो, अरे भीड़ और जमघट लगा हुआ है । मुझे बताओ, इस क्षेत्र में

जो पहले ही से इतनी अधिक भीड़-भाड़ है ! मुझे और मेरे राम को अकेला ही रहने दो।

तुमने क्या कहा ? अकर्मण्यता, पूर्वीय अकर्मण्यता ? क्यों ? अच्छा बताओ, अकर्मण्यता है क्या ?

आप लोकाचार के दलदल में फँसे हुए, अपने आपको रीति-रिवाज की धारा में बहाते हैं, एक निर्जीव बोझे की नाईं नाम-रूप के गड्ढे में डूबे हुए, सम्पत्ति के चक्कर में फँसे रहते हैं, और उस समय को, जो ईश्वर में लगाना चाहिए, रुपया पैदा करने में व्यय करना और फिर भी इसे 'भलाई करने' का नाम देना यह अकर्मण्यता नहीं तो क्या है ? क्या दूसरों की मर्जी पर अपना जीवन व्यतीत करना यहाँ तक कि भोजन, वस्त्र, चलने-फिरने, सोने, हँसने और रोने और वार्तालाप तक में सब भाँति परतंत्रता का अनुभव करना अकर्मण्यता नहीं है ? क्या अपने ईश्वरत्व को खो देना अकर्मण्यता नहीं है ? यह शीघ्रता और परेशानी क्यों ? यह सरतोड़ सरगर्मी और ज्वर पैदा करनेवाली धकापेल किस लिए ? दूसरों की नाईं उस सर्वशक्ति-सम्पन्न 'डालर' इकट्ठा करने के लिए न ? और उससे आगे ? दूसरों की नाईं आनन्द भोगने के लिए ? नहीं, प्यारे आनन्द के पीछे भागने में आनन्द नहीं होता। ऐ सांसारिक सम्मतियों के गुलाम ! तुम अपने आनन्द की घड़ी को क्यों टालते हो ? तुम यहाँ इस सुन्दर पहाड़ी नदी के तट पर की प्राकृतिक वाटिका में, क्यों नहीं बैठते और अपने वास्तविक सगे सम्बन्धियों (blood relations) की संगति का आनन्द क्यों नहीं उठाते ? यह स्वतंत्र वायु, रजत चन्द्रिका, क्रीड़ा करता हुआ जल, और हरित भूमि सभी ऐसे सगे-सम्बन्धी हैं कि जिन से वास्तव में तुम्हारा रक्त बना हुआ है। सभ्य राष्ट्र भी चर्म-दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था में बँधे हुए हैं। वे अपने आप को अपने स्वजनों से पृथक कर लेते हैं और स्वतन्त्र तथा विशाल प्राकृतिक दृश्यों और सुन्दर, ताज़े,

प्राकृतिक जीवन से अपने को दूर कर के चारों ओर से बन्द सुसज्जित कमरों, कोठरियों और अन्धे गृहों में वास करते हैं। वे अपने आप को विशाल विश्व से बाहर निकाले रखते हैं, और समस्त चराचर जगत् से बहिष्कृत तथा वृक्षों और पशुओं से बहुत दूर रहते हैं। अपनी श्रेष्ठता, चिरप्रतिष्ठित गौरव, मान, सम्मान, आदर आदि का घमण्ड करते हुए अपने आप को एक तंग घेरे में अलग कर लेते हैं। मेरे मित्रो! दया करो, अपने ऊपर दया करो।

जो धन तुम किसी सगठित चातुर्य के द्वारा दीन-दुखियों की सम्पत्ति से छीनकर अपनी सम्पत्ति में जोड लेते हो—उससे होगा क्या? तुम्हें उसके द्वारा होटलों और विश्रामगृहों में जी में मचली पैदा करने वाला भोजन मिल सकेगा, उसके बल पर तुम पीतवर्ण मुख-मुद्रा एवं सभ्य मानी जाने वाली शिष्टता के साथ इधर-उधर घूम सकते हो अथवा उन संदूक जैसे कमरों में बन्द रह सकते हो जिनमें चारों ओर कृत्रिमता ही कृत्रिमता की बू आती है। मतलब यह कि तुम्हारा चित्त रात-दिन व्यग्रता और उत्तेजना में डूबा रहेगा, तुम सदा ऐसे ही अप्राकृतिक उत्तेजकों, शारीरिक और मानसिक उत्तेजकों की खोज करते रहोगे। भला, इस आत्मप्रवंचना के लिए इतना सरदर्द क्यों? ऐसे मनगढ़ंत आमोद-प्रमोदों के पीछे अपने वास्तविक आनन्द का पल्ला तो मत छोड़ो। इधर-उधर भटकने से काम नहीं चलेगा। सीधे आओ आत्मदेव के पास, और इसी क्षण और इसी जगह अपने वास्तविक आनन्द का उपभोग करो। आओ, ज़रा मेरे साथ इस हरी-हरी दूब पर विश्राम तो करो!

अपने जीवन का बीमा कराने के लिए, मृत्यु-भय से निर्द्वन्द्व रहने के लिए सोने-चाँदी को बटोरने की चेष्टा में, लक्ष्मी देवी की उपासना में, अपने जीवन को गंवाने पर क्यों तुले हो? क्या रुपये-पैसों से धनाढ्य बनकर, अपने समय का अपव्यय करके तुम सचमुच अपने जीवन का बीमा करा सकते हो? ओ भ्रम में पड़े हुए अविनाशी पुरुष, क्या

सचमुच तेरी ऐसी धारणा नहीं है ? अन्यथा इन चमक-दमक पूर्ण अपदार्थों के पीछे दौड़-धूप करने में जीवन-रस खोने का बहाना क्यों करते हो ? उठो। आओ, मेरे साथ इस घास पर लेटो तो सही।

अपने जीवन का बीमा कराने में लक्ष्मी का अनुग्रह प्राप्त करने में अपना जीवन नष्ट मत करो। क्या तुम्हारे जीवन का बीमा (रक्षा) धनाढ्य होने तथा समय पर चन्दा दे देने से ही हो सकता है ? ऐ मूढ़ अविनाशी स्वरूप ! तू ऐसा विश्वास मत कर। अपने अस्तित्व के लिए तू सुस्वादु क्षुद्र वस्तुओं के पाने की दौड़-धूप में क्यों व्यर्थ बहाने खोजता फिरता है ?

The world is much with us, late and soon.
Getting and spending, we lay waste our powers:
Little we see in Nature that is ours;
We have given our hearts away, sordid boon;
This sea that bears her bosom to the moon;
The winds that would be howling at all hours;
And are up gathered now like sleeping flowers;
For this, for every thing we are out of tune;
It moves us not—Great God ! I'd rather be
A pagan suckled in a creed outworn !
So might I, standing on this pleasant sea,
Have glimpses that would make me less forlorn,
Have sight of Proteus rising from the sea;
Or hear old Triton blow his wreathed horn.

(Wordsworth)

अर्थः—

संसार हम से बहुत प्रबल है। देर या सबेर हम अपनी शक्तियों को खाने-कमाने में ही नष्ट कर देते हैं।

उस दैवी प्रकृति पर जो वास्तव में हमारी है, हम तनिक भी
ध्यान नही देते।
हमने अपना हृदय उस निकृष्ट वर (संसार) के पीछे दे दिया है;
यह समुद्र जिसने अपना वक्ष-स्थल चन्द्रमा के सम्मुख
खोलकर रख दिया है।
पवन जो स्वभाव से ही हर घड़ी गरजती और सनसनाती
रहती है;
और जो अब सोते हुए (बंद) पुष्पों के समान शान्त है;
इस (दृश्य) के लिए और प्रत्येक वस्तु के लिए हम
बेसुरे बने रहते हैं।
यह (दृश्य) हम पर कुछ प्रभाव नहीं डालता, हे परमात्मन्!
इससे तो मैं—
जीर्णमतावलम्बी मूर्ति पूजक (pagan) ही होता!
क्यों न मैं इस रमणीय समुद्र-तट पर खड़े होकर,
ऐसे दृश्य देखूं—
जिससे मुझे मेरी आत्म-स्मृति कम न हो।
सागर से समुद्र-देवता को उठते हुए देखूं,
और उस वृद्ध देवता (Triton) को अपना सुसज्जित
श्रृंगी-नाद करते सुनूं।
(वर्ड्सवर्थ)

अमेरिका और युरोप के सभ्यताभिमानी उन्नत राष्ट्र केवल आत्म-हनन की बड़ी-बड़ी अवस्थाओं में चल रहे हैं। उन्नति का अर्थ है आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति! वास्तविक उन्नति तो मनुष्य की वास्तविक आत्मा पर प्रकाश डालती है, केवल उसकी छाया पर समय नष्ट करने से उसका काम नहीं चलता। उन्नति का शारीरिक सम्पत्ति अथवा अनावश्यक जरूरतों की वृद्धि से कोई सरोकार नहीं। प्राचीन

आर्य लोगों ने बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं, शुद्ध आडम्बरशून्य स्वतंत्र जीवन व्यतीत किया है, संसार की किसी वस्तु पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा नहीं की, उन्होंने एक ऐसे प्रकार का जीवन व्यतीत किया था जो पुनः इतिहास में उचित परिवर्तनों के साथ दुहराये जाने योग्य है। आधुनिक सभ्यता अपने मुख्य केन्द्र से पथभ्रष्ट हो रही है। मनुष्य के बारे में ठीक उसी प्रकार बातें की जाती हैं जैसे अनाज या गेहूँ के सम्बन्ध में कि उनका मूल्य कितना बढ़ता है या कितना घटता है। इस भावना से ऊपर उठो। कोई वस्तु तुम्हारा मूल्यांकन नहीं कर सकती। ऊपरी दिखावे के प्रिय भक्तो! तुम्हें आर्यों का सन्यास और त्याग का आदर्श व्यर्थ का स्वप्न सा जँचता है? कृपा कर सावधान हो जाओ। समय आ गया है कि तुम हिला दिये जाओ, जगा दिये जाओ, तुम्हें सोचना-समझना चाहिए कि तुम स्वयं कैसे भयानक स्वप्न के चक्कर में पड़े हो। जिसने प्रेम-विभोर होकर त्याग का पाठ नहीं पढ़ा, वह सभ्य कहलानेवाला मनुष्य है तो निरा असभ्य ही, हाँ कुछ अधिक अनुभवपूर्ण, कुछ अधिक बुद्धिसम्पन्न!

सभ्य संसार की लोलुपता, लोकाचार, कृत्रिमता और चमक-दमक पर मुग्ध मत हो। ये सब बातें असफल, व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हैं। इनकी अग्नि-परीक्षा की गई, और ये काष्ठ, शुष्क घास और बेर के समान निस्सार सिद्ध हुईं। आधी जन-संख्या तो भूखों मर रही है, और शेष आधी स्पष्ट अपव्यय—जैसे अनावश्यक सामान, शराब की बोतलों, व्यर्थ के आडम्बरों, उत्तेजक व्यवहारों, नाना प्रकार के बहुमूल्य तुच्छ पदार्थों, मलिन सम्पत्तियों और अस्वास्थ्यकर दिखावे के बोझ के तले दबी जाती है।

न तो मानसिक परिश्रम और न शारीरिक परिश्रम स्वास्थ्य और दीर्घायु का विरोधी है। हां, विरोध होता है वहां, जहां एक परिश्रम को दूसरे की अवहेला पर स्थिर रखने की चेष्टा की जाती है। आजकल के

संसार में कुछ मनुष्य तो शारीरिक श्रम पर ही जीवित (नहीं, मर रहे) हैं, और कुछ बौद्धिक चिन्तन के दुर्व्यसन (मानसिक श्रम) के दबाव से नष्ट हो रहे हैं। यह बटवारा ऐसा है जैसे कि कुटुम्ब के कुछ लोगों में तो सूखी रोटियां और कुछ में केवल मक्खन (या चटनी) बांटा जा रहा हो।

विश्व में आत्म-निन्दित हैं वे लोग जो किसी वस्तु पर अधिकार करना चाहते हैं; वास्तविक शूद्र हैं वे जो किसी वस्तु पर अपना दावा करते हैं; कालकोठरियों में रहनेवाले आत्म-प्रताड़ित कैदी हैं वे जो किसी वस्तु के स्वामी बनते हैं; तुच्छातितुच्छ दया के पात्र हैं वे जो केवल धन सञ्चय करने में लगे रहते हैं। ऐसे आत्मघाती, अपने आप को धन की गंदगी में गले तक फँसाए हुए और उसके भार से दबे हुए आत्मघाती अपने आप को नरेश अथवा सभापति के नाम से पुकारते हैं, कुछ अपने आप को घोर अंधकार में डुबो कर डाक्टर तथा दार्शनिक बनते हैं, कुछ शारीरिक और मानसिक दौर्बल्य के दलदल में फँसे हुए उसे "शक्ति" समझते हैं, कुछ अपनी हास्यास्पद अवस्था में भीतर ही भीतर अपनी श्रेष्ठता का घमण्ड करते हैं। उन्होंने बलात् अपने को शुष्क भूमि में मछली मारने के श्रम में डाल दिया है। एक शब्द में ये लोग सब तरह से लाचार, सम्पत्ति और अधिकारों के भयानक स्वप्न में तड़प रहे हैं। बस हमें इन सब आत्म-द्रोहियों, विचित्र तपस्वियों को जगाने और उनके उद्धार करने की आवश्यकता है। धन, विद्या, अधिकार और उपाधियों, के घमण्ड और गौरव के भावों को चूर्ण कर दो। 'समता' आनन्द का एकमात्र नियम है। हिंसक लालच, छापा मार कर छीना-झपटी करने की पशु-प्रवृत्ति, और पशु प्रवृत्ति से भी निकृष्ट अधिकार जमाने और धन संचय करने की लालसा ऐसे लोगों को हैरान, परेशान और चंचलचित्त बनाये रहती है। मिथ्या दर्प और उच्चाकांक्षाओं के संघातक ज्वर को शान्त होने दीजिये। यह अटल सत्य प्रत्येक कर्णपुट में फूँक-फूँक दो,

इसे हृदयतल में प्रविष्ट कर दो कि तू जितना ही अधिक किसी वस्तु पर अधिकार जमाता है, उतना ही अधिक स्वयं तुझ पर उस वस्तु का अधिकार और आवेश जमता जाता है।

ऐ सत्य के जिज्ञासु! सभ्यता अथवा अपने समीपवर्ती संसार की रीतियों के दबाव से परेशान मत हो। तू यथाकथित उन्नतशील राष्ट्रों के बाह्य आडम्बर और चमक-दमक से क्यों भयभीत होता है? उनकी उन्नति की मात्रा और आंकडे तो इन्द्रियों का धोखा, कल्पना और जल्पना मात्र हैं। और उनकी नकदी, उनकी ठोस सम्पत्ति उतनी ही सच्ची है जैसे मृगतृष्णा का जल। इस बीसवीं शताब्दी में वह दिन दूर नहीं जब कि उन्नतिशील राष्ट्रों को अपनी शासन-प्रणालियों एवं रहन-सहन की पद्धतियों को बदलना पड़ेगा और उन्हें स्वतंत्रता और वेदान्त के नियमानुसार बनाना पड़ेगा। अधिकार जमाने के भाव को त्यागने और वेदान्त-विहित संन्यास के भाव को ग्रहण करने पर ही राष्ट्रों तथा व्यक्तियों की मुक्ति निर्भर है। इसके सिवा दूसरा मार्ग है नहीं।

सभी पाश्चात्य सभ्य देशों में, जो धन-तृष्णा के ज्वर से पीड़ित हो रहे हैं, भीतर ही भीतर ऐसी शक्तियां बड़े जोर से कार्य्य में लगी हुई हैं, जो इन आत्मघाती कीड़ों (जीवों) को शीघ्र, बहुत ही शीघ्र, इस स्वत्व जमाने के भयंकर स्वप्न से अवश्य जगा देंगी। त्याग का शासन संसार का कल्याण करेगा, स्वतन्त्रता का राज्य दिलायेगा।

प्रश्नः—क्या आप किसी नवीन मत का प्रतिपादन करना चाहते हैं?

उत्तरः—राम किसी मत का प्रतिपादक नहीं। सत्य स्वयं अपना प्रतिपादन कर लेता है। राम केवल उस परमात्मा के मार्ग में बाधा नहीं खड़ा करता, अपने को स्वच्छ स्फटिक के समान बनाये हुए है और प्रकाश को निर्बन्ध हो अपने भीतर फैलने देता है। वह चाहे जिस रूप में चमके। चाहे देह, मन वाणी—सब कुछ उस ज्वाला में भस्म हो

जाय। इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है कि संदेश फैल जाय, संदेशवाहक चाहे मर जाय।

प्रश्नः—क्या आप किसी पैग़म्बर या अवतार की भाँति काम करना चाहते हैं ?

उत्तरः – नहीं, यह तो मेरी महिमा का निरादर है। मैं स्वयं ईश्वर हूँ और वैसे ही ईश्वर तुम हो। यह शरीर तो मेरा वाहनमात्र है।

प्रश्नः—ऐसी बात से आपका संदेश चल नहीं सकता, लोग उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं।

उत्तरः इससे मुझे क्या ? मै (सत्य) कभी हानि-लाभ के तुच्छ विचारों के सहारे नहीं चलता। समस्त युग मेरे हैं, अनन्त काल मेरा है। यदि ईसा को उसके आदमियों ने स्वीकार नहीं किया तो क्या ? समस्त संसार ने तो उसे अपना लिया। यद्यपि उसके अपने युग ने उसकी बात न मानी तो न मानी किन्तु सारे भविष्य युग तो उसके अपने ही थे।

प्रश्नः— इतिहास आपके इस विचार का समर्थन नहीं करता।

राम—आपका इतिहास अपूर्ण है, इतिहास का वह अध्याय, जिसे यह 'सत्य' लिखने वाला है, अभी तक आपने पढ़ा नहीं। दृढ़ सकल्प के आगे—चाहे एक ही व्यक्ति का सत्संकल्प क्यों न हो—इतिहास काँप उठता है। इतिहास भीतरी कारणों को भूल कर केवल बाह्य चिह्नों के अध्ययन में ही अपने को भुलाता रहता है।

प्रश्नः इमरसन ने कहा था—प्रेम का सच्चा बन्धन एक ही भाँति की अनुभूति से उत्पन्न होता है, और आप, जो सामान्यतः किसी मत विशेष के अनुयायी नहीं हैं, किसी के साथ भी अनुकूल होते दिखाई नही देते। कैसा प्रेम-हीन जीवन आप भोग रहे है !

उत्तरः—मुझे अपनी चित्रकारियों (संसार) को विभिन्न दृष्टियों से देखने में ही मज़ा आता है। यहाँ एक स्थल से मैं एक अनुदार की

भाँति देखता हूँ, और वहाँ दूसरे स्थल से एक उदार की भाँति उनका अवलोकन करता हूँ। राम (या पूरन) की दशा में मै अपनी दायीं ओर से इन्हें देखता हूँ; और एक आलोचक के रूप में मैं ही बाईं ओर से इनका निरीक्षण करता हूँ। ये सारे रूप और झाँकियाँ मेरी ही तो है। जब ग्वालिन दूध या दही मथकर मक्खन निकालती है, तो दाहिने हाथ की डोरी भी वही खींचती है, और बायें हाथ की डोरी भी वही खींचती है। सभी दृष्टियां मेरी अपनी हैं, मैं किसी से विरोध कैसे कर सकता हूँ ? मैं तो प्रेम का महासागर हूँ। मैं ही उसकी विभिन्न लहरों में लहरा रहा हूँ। मैं प्रत्येक व्यक्ति से, सभी व्यक्तियों से विरोध रखना स्वीकार करता हूँ। आओ और मेरे साथ इस नानत्व में एकत्व का आनन्द लूटो।

प्रश्नः—क्या यह रहस्यवाद नहीं है ? वह व्यक्ति किसी दूसरे के साथ कैसे अभेद हो सकता है, जो उससे पूर्णतः विलग रहता है ?

उत्तरः—अच्छी बात, यह रहस्यवाद ही सही। मैं भी विस्मित हूँ कि देखने में यद्यपि हम एक हो नहीं हो सकते, फिर भी हम एक हैं।

सम्भव है कि पंगु दर्शन-शास्त्र इसे सिद्ध करने समर्थ न हो, इन्द्रियाँ इसे दिखाने में असमर्थ और असहाय हों फिर भी बात है ऐसी ही। जब तत्व का अनुभव कर लिया जाता है, तब सभी वाह्य नामरूप नष्ट हो जाते है। प्रेम इस तथ्य को सिद्ध करता है:—"वह तू ही है" "तू आप ईश्वरत्व है।"

प्रश्नः—आप ईश्वर को नपुंसकत्व में क्यों संबोधित करते हैं।

उत्तरः—कोई ईश्वर को 'स्वर्गीय पिता' मानकर पूजते हैं, और उसे पुल्लिंग नाम से संबोधित करते हैं। कुछ लोग परमात्मा को 'आदि माता' करके पूजते है, अतः उन्हें उसे स्त्रीलिंगवाचक नामों से संबोधित करना ही चाहिए। कुछ लोग फारसी कवियों की भांति ऐसे भी हैं जो

उसे अपने 'प्रेम-पात्र' के रूप में पूजते हैं। अतः ईश्वर के लिए कोई नाम नियत करने से पूर्व हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि ईश्वर पुल्लिंग, स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग है।

प्रश्नः—अच्छा, आप ही बताइये।

उत्तरः—वह स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग कुछ नहीं, वह है रहस्य और लिंगहीन।

❀ अरण्य-संवाद ❀

संख्या (२)

सम्पत्ति

निम्नलिखित विषय का अधिकांश भाग एक प्रश्न के उत्तर में लिखा गया। राम टहलने जा रहा था, किसी चौराहे से पहले एक सज्जन ने राम से वह प्रश्न पूछा था।

ऐ भाग्यवान् पाठक! क्या वह आप ही थे जिसने एक बार साम्पत्तिक अधिकारों, या यदि आप राम को इस त्रुटि-सुधार के लिए क्षमा करें तो साम्पत्तिक अपकारों के सम्बन्ध में राम के विचार पूछे थे? अच्छा, चाहे कोई भी रहा हो, जिसने यह प्रश्न किया था, राम की आँखों में वह आप ही पवित्र आत्मा थी, चाहे वह इस शरीर में रही हो, या किसी अन्य किसी शरीर में। प्रश्न था—सम्पत्ति क्या है?

जो किसी प्राणी, व्यक्ति (या वस्तु) के लिए समुचित हो। स्वभावजन्य हलकापन, ज्वलनशीलता इत्यादि, हाइड्रोजन के गुण हैं, परन्तु वे जिस शीशी में कि वह वायु भरी है, उसका गुण नहीं हो सकते। इसी प्रकार मनुष्यत्व, नहीं, नहीं, ईश्वरत्व, आपका गुण है, परन्तु वह घर जिसमें आप रहते हैं, अथवा वह रत्न, जिसे आप पहनते हैं, आपका गुण नहीं हो सकता। मनुष्य अपना जन्म-जात स्वत्व, अपनी निजी स्वाभाविक सम्पत्ति ईश्वरत्व छोड़ने के लिए तैयार रहते हैं। परन्तु घर, सोना-चाँदी और अन्य ऐसी वस्तुओं को अपनी सम्पति मान कर और उनसे अत्यन्त घनिष्ठता से चिपट कर के अपने आपको निरन्तर कैसा हास्यास्पद बनाने का दुराग्रह करते हैं! कैसा भयंकर मज़ाक़ है!

धन और सम्पत्ति के आधार पर वर्ग-भेद व श्रेणी-विभाग करना वैसा ही नितान्त अस्वाभाविक है, जैसे मनुष्यों को उनके जूतों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में बांटना।

इस घोषणा के द्वारा राम बतलाना चाहता है कि आत्म-साक्षात्कार में यदि कोई बाधा या पर्दा है तो यहीं हमारे स्वत्व का साधारण भाव, अपनी गठरियों और सामानों पर अधिकारों की भावना। ज्योंही हम किसी वस्तु पर अधिकार जमाना चाहते हैं, त्योंही हमें आत्म-भ्रम रूपी दानव धर दबाता है। त्याग, इस त्याग को ही आप सर्वाधिकार कह सकते हैं, जो सत्य से अभेद है और यही शुद्ध और सरल वेदान्त है। भौतिक क्षेत्र में वेदान्त की प्रतिष्ठा का अर्थ है पूर्ण प्रजासत्ता और समानता, जिसमें न किसी बाह्य सत्ता का बोझ रहता है, न व्यर्थ धन-संचय की वासना, न सांसारिक अधिकारों की लिप्सा, न मिथ्या बड़प्पन का दर्प, और न मिथ्या छुटपन की घबराहट। वेदान्त इसी भावना को मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी प्रतिष्ठित करता है। प्रत्येक वस्तु पर से, सभी वस्तुओं पर से अपना एकाधिकार हटा लेना ही वेदान्त है। इस त्याग में सभी कुछ सम्मिलित है। जैसे देह और मन-बुद्धि, रचनायें और व्याख्यान, घर और कुटुम्ब, यश और प्रतिष्ठा आदि दूसरे शब्दों में, समस्त सीमाओं और बन्धनों को उखाड़ फेंकना ही वेदान्त है। अपने चारों ओर घेरा खड़ा करके तुम अपने आप दूसरों को एक दूसरे घेरे में डाल देते हो। क्यों नहीं ईश्वर की नाईं संसार की प्रत्येक शक्ति, प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक तारा और वृक्ष पर अपना स्वत्व स्थापित करते—यही वेदान्त है। सामान्यतः इस विशाल जगत् द्वारा वेदान्त के इस अनुभव-गम्य मार्ग को सुगम करने के लिए बहुत से संगठित उपाय (अधिकांश अज्ञात रूप से) किये जा रहे हैं। अन्त में संन्यास की ध्वजा समस्त संसार पर फहरा कर ही रहेगी।

कुछ वेदान्त-प्रेमी तो पहले ही से इस प्रेम पूर्ण राज्य में जीवन

व्यतीत कर रहे हैं, और कुछ स्थलों में तो प्रेमाग्नि की यह ज्वाला इतिहासातीत काल से जलती चली आ रही है।

थोड़ी देर के लिए एक ऐसे साधू का ध्यान कीजिये जो भगवती भागीरथी के तट पर गायों, कुत्तों, मछलियों, पक्षियों के बीच बैठा हुआ सबके प्रेम में मगन है और उनके प्रेम से उत्साहित हो उनके हाथों से रोटी छीन-छीन कर प्रेम से खाता है। आओ, राम एक अन्तिम कोटि का दृष्टान्त देगा।

राम को एक ऐसे साधु का पता है जिसका शरीर एक गहरे घाव से व्यथित है। कीड़े खाल को खाये जा रहे हैं, और वह उन कीड़ों को मारने के लिए किसी लेप का उपयोग नहीं करता। जब कीड़े घाव की पीब से तृप्त होकर गिर पड़ते तब वह हँस-हँसकर मुस्कराते हुए उन्हें उठा लेता और फोड़े के पास बिठा देता। मेरे इस छोटे से शरीर पर संसार के प्रत्येक कीड़े का अधिकार है। और यह विशाल विश्व मेरे सिवा किसका है? विशाल विश्व मेरी देह है, वायु और भूमि मेरे वस्त्र और उपानह हैं।

साधु का अर्थ है निरन्तर दान करनेवाला। सत्य में डटे रहो और संसार की अन्य चीज़ों से क्या मतलब? संन्यासी अपनी भिक्षा भी किसी भूखे को दे डालता है, और जब उसके पास कुछ देने को नहीं रहता तो आनन्दपूर्वक अपना शरीर भी मक्खियों, कीड़ों, और सरीसृपों के हवाले कर देता है, और सबकी आत्मा बना हुआ वह इस दान में भी दान पाने का मज़ा लेता है। मक्खियों और कीड़ों को जो मांस खाने में आनन्द आता है, वह उनके आनन्द में भी हिस्सा बटाता है। अपनी हड्डियाँ सुखाता है और उन सुखानेवाले पवन और उष्णता का आनन्द भोगता है और स्वयं वायु तथा उष्णता होकर अस्थियों के सुखाने में आनन्द भोगता है।

साधारणतः दानशीलता ने ऐसा बुरा पलटा खाया है और बुराई यहाँ तक बढ़ गई है कि सम्पत्ति का तुच्छ अल्पांश भी दे डालना उस सम्पत्ति का तुच्छातितुच्छ अंश दे देना जो समाज के एक अंग को पद-दलित और दरिद्र बनाकर, उस पर अत्याचार करके एकत्रित किया गया है, उत्तम दान के नाम से पुकारा जाता है। मानो किसी मरणासन्न व्यक्ति के मुँह में थोड़ा सा जल डालकर उसकी पीड़ाओं को कुछ दीर्घ कालिक बना देना बड़ा भारी पुण्य-कर्म है। व्याज न लेना (संस्कृत में जिसका मूल अर्थ कपट और छल है और जो आजकल सूद कहलाता है) बड़ा भारी अनुग्रह समझा जाता है, क्योंकि आजकल व्याज का रिवाज हो गया है।

यह तो यूरोप और अमेरिका के दान का चित्र है। भारतीय दान की बात मत पूछो, तो वह भूखे मरनेवाले, मजदूर पेशावाले शूद्रों की ओर आँख उठाकर देखना भी नहीं चाहता, वह तो उन दानवीरों को सीधे स्वर्ग ले जाने का दावा करता है जो कि ईश्वर के मन्दिरों में बैठे हुए पूर्ण तृप्त आलसियों और प्रगतिविरोधी जड़ धर्म के उच्च प्रतिनिधियों को पेट भर खिलाने में ही कल्याण मानता है।

राम चाहता है कि सरलता ही तुम्हारा फैशन हो। किसके द्वारा तुम अधिक आकर्षक बन सकते हो ? वस्त्रों के द्वारा जो तुम्हें ढके रहते हैं अथवा उस सहज सौंदर्य के द्वारा जो तुम्हें खोलकर दिखाता है ? वस्त्रों अथवा अन्य किसी वस्तु से सौंदर्य उधार लेने की क्या आवश्यकता ! स्वाभाविक मुस्कान, स्वास्थ्य, और प्रसन्नता को ही आभूषण बनाओ।

जिसे मेरी चोरी करना हो, कर ले। मुझे क्या ? धन-सम्पत्ति की भूखी सरकारें भले ही सम्पत्ति से सम्पत्तिवान् होने की मूर्खता करें, तुम्हें उससे क्या ? तुम्हारी सम्पत्ति तो है अचल सत्य, सत्य ही तुम्हारी आत्मा है। निस्सन्देह सांसारिक धन-सम्पत्ति, खारी समुद्र-फेन के लिए नहीं, सत्य के लिए उद्योग करो। क्या हमें विश्वविद्यालय की उपाधियों

की आवश्यकता है ! एकदम मूर्खता । अन्तिम उपाधि तो अपने आप ही धारण करना पड़ती है ।

यह सत्य है कि स्वप्न के सिंह को मारने के लिए स्वप्न-रचित खड्ग की आवश्यकता होती है । परन्तु जाग्रत् अवस्था की चेतना के दृष्टि-बिंदु से स्वप्न-प्रदेश के सिंह और खड्ग दोनों का कोई मूल्य नहीं । ठीक यही बात भौतिक विद्याओं और कला-कौशल की है । वे सांसारिक विद्या के रूप में चाहे जितनी आवश्यक हों, परन्तु आत्मसाक्षात्कार में उनका क्या मूल्य ! आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में एक बड़ी भारी बाधा, अड़चन है बौद्धिक पूँजी का अत्यधिक मान-सम्मान, विश्वविद्यालयों की डिगरियों, प्रमाणपत्रों, उपाधियों एवं अन्य बौद्धिक सम्पत्तियों का असाधारण आदर-भाव । आत्मानुभवी मनुष्य के लिए तो यह संसार मनुष्यों की सम्मोहन विद्या की कृति जैसी है जिसमें वे स्व-रचित पागल-खाने (सृष्टि) में पारस्परिक संकेतों से एक दूसरे को सँभाले रहते हैं । संसार के सभी पदार्थ उन झीलों के सदृश हैं जिनको सम्मोहित व्यक्ति सूखी पृथ्वी पर बना लेता है । जब संसार ही ऐसे धोखे की टट्टी है तो फिर उन वस्तुओं का ज्ञान, जिसके बल पर बड़े बड़े विद्वान् और आचार्य बड़े बनते और बड़प्पन का गर्व करते हैं, हिप्नाटिज्म और सम्मोहन विद्या के सिवा क्या है ! संसार खोखला है, और इन लोगों का ज्ञान भी खोखला है । जिसने आत्मानुभव किया है जो समस्त सांसारिक दृश्य जगत् के मूल स्रोत पर पहुँच चुका है, उसे न तो बड़े बड़े भूमण्डलों, नदियों, पर्वतों, सूर्यों, तारों में कोई आश्चर्य दिखाई देता है और न ऐसे पदार्थों का ज्ञान ही उसके लिए वास्तविक महत्त्व का सिद्ध होता है जो ज्योतिषियों, गणितज्ञों, वनस्पतिशास्त्रज्ञों, भूतत्त्वज्ञों तथा पशुविद्या-विशारदों ने प्राप्त किया है । ऐसा ज्ञान तो उसके लिए केवल खेल-तमाशा और दिल्लगी मात्र है । जो लोग सांसारिक पदार्थों के अधिपति, पूँजीपति हैं, और जो उनका ज्ञान रखनेवाले वैज्ञानिक

हैं उसके लिए वे दोनों उन्हीं पदार्थों की कोटि के हैं, केवल दृश्य-मात्र हैं। विद्वानों, दार्शनिकों और आचार्यों की धमकियां और अनुग्रह, आलोचनाये और सम्मतियां ब्रह्मज्ञानी पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालती, वे सब उसके लिए निरर्थक हो जाती हैं। सामान्यता सांसारिक विश्व-विद्यालय, प्रदर्शनियां, और मेले, सब के सब हमारी सम्मोहन अवस्था को बढ़ानेवाले लम्बा करनेवाले साधन मात्र हैं। उसी प्रकार ये गिरजे घर, मन्दिर, सभाये तथा सम्मेलन सभी कुछ उस सांसारिक स्वप्न को बढ़ाने के विभिन्न ढंग हैं। जीवन्मुक्त को इस पर अथवा इसके विचित्र से विचित्र परिवर्तन पर लेशमात्र भ्रांति अथवा आश्चर्य नहीं होता, सूर्य चाहे जमजाने वाली स्थिति पर पहुँचकर ठण्डा हो जाय, चन्द्रमा चाहे सर्वोच्च ताप से गर्म हो जल उठे, नहीं, नहीं, चाहे अग्नि की ज्वाला ऊपर के बदले नीचे की ओर जलने लगे, अथवा समस्त आकाश कागज के पन्ने की भांति लपेट लिया जाय।

एक समय था जब ब्राह्मण (पुरोहित) संसार पर शासन करते थे, एक युग आया जब क्षत्रियों (शूरवीरों) ने शासन किया और आजकल वैश्य (पूँजीपति) शासन करते हैं; श्रमिकों (शूद्रों) की प्रधानता का युग आ रहा है; परन्तु ऐसे शूद्रों का जो सचमुच संन्यास भाव से पवित्र हुए हैं।

यूरोप और अमेरिका में श्रमशील जाति (शूद्र वर्ण) परम्परागत नियमों तथा धार्मिक आज्ञाओं द्वारा जकड़ा हुआ, गतिशून्य नहीं है, फिर भी वहां की स्थिति संतोषजनक नहीं है। भारत में यह बुराई और अन्यायपूर्ण वर्णव्यवस्था के कारण दुगुनी बढ़ गई है, क्योंकि यह सब जातियों को आत्मप्रवंचन में सहायता देती है। सम्प्रति यह वर्ण-व्यवस्था हड़तालों को तो रोकता है, किन्तु समस्त राष्ट्रों को अधिकाधिक डरपोक और गौ जैसी अशक्त बना रही है।

इस समय तक वेदान्त केवल कुछ इने-गिने लोगों की सम्पत्ति बना हुआ था, अधिकांश में बौद्धिक धरातल पर ही उसका प्रयोग होता था।

इस वेदान्तरूप शिशु को इतना काल हो गया, वह पृथ्वी माता (हिमालय) के गर्भ में ही ठहरा रहा, परन्तु अन्त में आज वह नीचे मैदानों में पतितपाविनी गंगा के रूप में उतरा है और सब को, ब्राह्मणों और शूद्रों को, मनुष्यों और देवताओं को एक समान पवित्र करेगा। उसके आगे सभी अस्वाभाविक भेद भाव भाग जायँगे। सजीव प्राणी एक होना चाहिए, ऐसी वृत्ति का अनुभव बहुत कम होता है। ठीक जैसे तुम्हें नियत समयों पर भोजन करने की आवश्यकता जान पडती है, परन्तु उसका पँचना और अंग-प्रत्यंग एवं शरीर की भिन्न-भिन्न इन्द्रियों में विभाजित होना इत्यादि अपने आप ही होता रहता है, तुम्हें ज्ञात नहीं होता; उसी प्रकार जब तुम प्रेम और ईश्वर की एकता और अखंडता में एकाग्र हो जाते हो तो ये भेद-भाव और उचित भिन्नता अपने आप अपना काम करती रहती हैं।

ऐ राजकुमारो, पुरोहितो, शूद्रो, और भारत की शासक जातियो! क्या तुम आगे आनेवाली दशा की कल्पना कर सकते हो? तुम्हें चाहे विचित्र और विलक्षण मालूम हो किन्तु मेरी आँखों के आगे स्वामियों का संसार खड़ा हुआ है; मानो देवता पृथ्वी तल पर विचर रहे हैं; शरीर दृष्टि से मनुष्य का भेद-भाव, लो, गायब हो गया! भारत, चीन, अमेरिका, इँगलैंड, आदि के पारस्परिक भेद भी लोप! नये-नये स्फटिक उदय होते, फिर घुलते और नये-नये रूप ग्रहण करते और अपने समय पर फिर मिट जाने के लिए उत्पन्न हो रहे हैं।

हे सोनेवाले प्यारो! अपने नेत्रों से नाप-तौल का पर्दा हटा दो, और देखो कि श्रेष्ठतम संन्यासी नीचातिनीच शूद्रों से हाथ मिला रहे हैं। वह देखो! उनका भिक्षा-पात्र फावड़े और कुदाल में बदल गया है! संन्यासियों ने अपनी अकर्मण्यता त्याग दी है; शूद्रों के परिश्रम को संन्यास का गौरव प्राप्त हुआ है। त्यागभाव सबके हृदयों में जोश मार रहा है; वेश्या का निर्लज्जता-पूर्ण साहस और 'राम' की पवित्रता एक में

मिल गई है; मेमने की कोमलता ने सिंह की वीरतापूर्ण दृढ़ता का आलिंगन किया है; उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव जैसे विरोधी मिल गये हैं और बीच के सभी अस्वाभाविक भेद-भाव मिट गये हैं, विश्व एक कुटुम्ब बन गया है। इस चित्र को देखो—देखो, ध्यान से देखो। देखो, और ध्यानपूर्वक उसे परखो।

इस सिद्धि के लिए हमें क्या तलवार या तोप की आवश्यकता होगी? नहीं। पुलिस की? नहीं। क्या यह अलौकिक रामराज्य की कल्पना है? नहीं तो? यह कोई असार कल्पना नहीं है। क्या यह साम्यवाद अथवा समाजवाद है? सम्भव है ऐसा हो। किन्तु भारत के लिए ऐसी उन्नति अपने घर की चीज़ है, वेदान्त का अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग है। भारतवासियो! यदि तुम अपने आपको पहचानो और इस त्याग-भाव को धारण कर लो, तो फिर आधि-व्याधि कैसे रहेगी? जब मानसिक पीड़ा गई, तो शारीरिक व्यथा का भागना अनिवार्य है। छल-कपट पूर्ण कार्यों की क्या आवश्यकता, चालें चलने की क्या जरूरत! सन्देह और भय की भी हमें क्या आवश्यकता; निर्बल अनीश्वरवादी या आत्मघाती उनका अनुसरण करें तो करें।

मैं राम बादशाह हूँ, जिसका सिंहासन तुम्हारा अपना हृदय है। जब मैंने वेदों द्वारा शिक्षा दी थी, जब मैंने कुरुक्षेत्र, यूरूशलम, और मक्का में उपदेश दिया था, तब लोगों ने मुझे कुछ का कुछ समझा, मैं फिर से अपनी आवाज ऊँची करता हूँ। मेरी वाणी तुम्हारी वाणी है, 'तत्त्वमसि', जो कुछ दिखाई देता है, वह सब तू ही तू है।

लो, तुम में से कुछ लोग भवें चढ़ा रहे हैं। मैं देखता हूँ कि तुम में से कुछ लोगों ने अपनी अपनी नासिकायें तीस अंश के कोण तक टेढ़ी कर ली हैं। तुम में से किसी किसी ने घृणा से पत्र को परे फेंक दिया है। पर तुम चाहे जो करो; दैवी नियम, विधान अपना काम करेगा ही, कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती; बड़े से बड़े नरेश, दानव और देवता

उसका सामना नहीं कर सकते। सत्य का नियम अटल है। घबराओ नहीं। मेरा सिर तुम्हारा सिर है; यदि तुम्हारी प्रसन्नता हो उसे काट लो; परन्तु इसके स्थान पर सहस्रों और उत्पन्न हो जायँगे।

शम्स तबरेज ने यही गीत गाया है। प्यारे मधुर स्वरवाले बुल्ला शाह तथा पंजाब के तेजस्वी 'गोपालसिंह' ने भी यही राग अलापा था! ईसा मसीह ने यही सत्य गुनगुनाया था और मुहम्मद साहब ने यही नवचन्द्र देखा था! पर इन बातों को छोड़ो। मेरी ईद तो तब आयगी जब मैं उसे देखूँगा। सनातन सत्य सदा चिर नूतन रहता है। तुम्हारी ईद तब आयगी जब तुम अपने आप का अनुभव करोगे। संसार भर के पैगम्बर और सिद्ध महात्मा जो तुम्हारे अपने आत्म-अज्ञान के नायक हैं सब के सब तुम्हीं में लीन हो जायँगे, ज्यों ही तुम अपनी सच्ची आत्मा, सच्चिदानन्द में जाग उठोगे।

❀ अरण्य-संवाद ❀

(सख्या ३)

सुधारक

"Higher and still higher
From the earth thou springest
Like a cloud of fire;
The deep blue thou wingest
And singing still dost soar,
And soaring ever singest"

(Shelly)

अर्थ:—

ऊँचे ऊँचे तू पृथिवी से ऊपर उठता है जाता—
अग्नि के ज्वलन्त मेघ के समान नीलतम आकाश में तू उडता—
और गाने के साथ उड़ता और उड़ने के साथ गाता है।

[शैली]

❀ पवित्र छाया ❀

[रुथक्र पट द्वारा फ्रान्सीसी भाषा से अनूदित]

बहुत युग बीते एक महात्मा था इतना ऊँचा और इतना श्रेष्ठ कि स्वर्ग से देवतागण चकित होकर यह देखने आते थे कि कोई मर्त्य इतना धर्मात्मा कैसे हो सकता है। वह अपने दैनिक कार्यों के लिए इधर-उधर जाता था और सद्‌गुण ऐसे फैलने लगते थे जैसे तारे से प्रकाश और पुष्प से सुगंध। उसे उनकी कुछ भी खबर न होती थी।

दो शब्दों में उसकी दिनचर्य्या समाप्त होती —"वह दान देता और क्षमा करता ।" तो भी ये शब्द कभी उसके मुख से नहीं निकलते थे। हाँ, उसकी उत्साहपूर्ण मुस्कान, दया, क्षमा, दानशीलता और उदारता में ही वे व्यक्त होते थे।

स्वर्गीय दूतों ने ईश्वर से प्रार्थना की—प्रभो! आप उसे कुछ दिव्य शक्तियाँ प्रदान कीजिये।

ईश्वर ने उत्तर दिया—"स्वीकार है, पर उससे पूछो कि वह क्या चाहता है।"

तब देवताओं ने महात्मा से पूछा:—"क्या आप अपने कर के स्पर्श मात्र से रोगियों को चंगा करना चाहते हैं?"

"नहीं", महात्मा ने उत्तर दिया—"मैं चाहता हूँ कि ईश्वर उन्हें चंगा करे।"

"क्या आप पतित आत्माओं को धर्म में लाना तथा पथभ्रष्ट हृदयों को सन्मार्ग पर लगाना पसन्द करेंगे?"

"नहीं, वह कार्य्य स्वर्गीय दूतों का है। मैं सविनय निवेदन करता हूँ कि मै धर्म-परिवर्तन नहीं कराता।"

"अच्छा, आप सन्तोष की मूर्ति बनकर अपने सद्गुणों के प्रकाश से मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित करना और इस प्रकार ईश्वर का महत्व बढ़ाना चाहेंगे?"

महात्मा ने उत्तर दिया—"नहीं, यदि मनुष्य मेरी ओर आकर्षित होंगे, तो वे ईश्वर से पृथक् हो जायेंगे। प्रभु के पास अपना यश बढ़ाने के अन्य अनेक साधन हैं।"

स्वर्गीय दूत झल्ला उठे—"तब आप क्या चाहते हैं?"

महात्मा ने मुस्कराते हुए कहा—"मुझे तो किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।"

यदि ईश्वर मुझ पर अनुग्रह करें, क्या तो उसी अनुग्रह के साथ, मेरे पास अन्य प्रत्येक वस्तु स्वयं न आ जायगी ?

परन्तु स्वर्गीय दूतों ने यह इच्छा प्रकट की कि आपको कोई न कोई सिद्धि जरूर माँगनी चाहिए ; नहीं तो एक न एक सिद्धि आप पर थोप दी जायगी।

महात्मा ने कहा—"बहुत अच्छा, यदि नहीं मानते तो यह वरदान दीजिये कि मै विना जाने महान् उपकार करता रहूँ।"

स्वर्गीय दूत बड़े परेशान थे। उन्होंने परस्पर परामर्श किया और यह युक्ति निकाली कि हर बार बाहर जाते समय जब महात्मा की छाया उसके पीछे या दाईं या बाईं ओर पड़े जिसे वह देख न सके, तो उस छाया में रोग को अच्छा करने, दुःख को शान्त करने और शोक को हरने की शक्ति होनी चाहिए।

ऐसा ही हुआ, जब कभी महात्मा चलता और उसकी छाया पृथ्वी पर दाये-बायें अथवा पीछे पड़ती, तो वह शुष्क मार्गों को हरा-भरा कर देती, मुर्झाए हुए वृक्षों को तरोताजा और शुष्क स्रोतों को निर्मल जल से प्लावित करती, छोटे-छोटे पीतवर्ण बच्चों को हृष्ट पुष्ट और दुखी माताओं को प्रसन्नता से भर देती।

परन्तु महात्मा तो अपने नित्य कार्यवश इधर-उधर जाता था, और सद्गुण, उसके अनजान में इस प्रकार फैलते थे, जिस प्रकार तारागण से प्रकाश और पुष्प से सुगंध।

और लोग उसकी शालीनता का सम्मान करते हुए, चुपचाप उसका अनुसरण करते उससे तथा उसकी अलौकिक सिद्धि के सम्बन्ध में कभी कुछ न कहते। धीरे धीरे वे उसका नाम भी भूलने लगे और उसे 'पवित्र छाया' के नाम से पुकारने लगे।

"ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।"

अर्थः—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव और ब्रह्म दो नहीं।

भावार्थ.—तुम्हारे लिए सत्य का आकार इतना विशाल हो जाय कि उसकी विशालता के सम्मुख नाम-रूप, धन-जन और व्यक्तित्व आदि का तुच्छ दिखावा धीरे-धीरे शून्यता में लीन हो जाय। जब सत्य के साथ तुम्हारी अभेदता सच्ची और वास्तविक होगी, तब ईर्ष्या-द्वेष के तीर तुम्हें न चुभ सकेंगे, गैंडा अपनी सींग भोंकने के लिए अणुमात्र भी स्थान न पायगा, सिंह को अपने पंजा जमाने के लिए स्थान न मिलेगा, खड्ग को घुसने के लिए कोई जगह न मिलेगी, तोप के गोले तुम्हारे ऊपर बरसते हों, वे तुम्हें छू तक न सकेंगे।

एकमात्र सत्य के साथ तुम्हारी एकता होनी चाहिए। यदि तुम्हें एकदम अकेले खड़ा होना पड़े, तो भी सत्य में रहो, सत्य में ही प्राण त्यागो। यदि सत्य-जीवन के नभ-स्पर्श करनेवाले शिखरों पर तुम अपने को अकेला पाते हो, तो सद्धर्म मार्तण्ड ही तुम्हारा साथ देने के लिए यथेष्ठ है। तुम्हारे जीते-जागते उपदेशों को पाकर झुण्ड के झुण्ड साथी आने लग जायँगे। इस प्रकार बना हुआ संगठन स्वाभाविक होगा। खुशामद करके संगठन के पीछे मत पड़ो। मैं किसी को अपना मत ग्रहण करने पर जोर नहीं डालता और न बहुत से अनुयायी एकत्र करना चाहता हूँ। मैं तो केवल सत्य में रहता हूँ। सत्य को अपनी रक्षा के लिए रक्षकों की आवश्यकता नहीं होती। क्या सूर्य्य के प्रकाश को किसी ईश्वरीय दूत और पैगम्बर की आवश्यकता होती है? मैं सत्य नहीं फैलाता, सत्य स्वयं मुझे चलाता और अपने आप फैलता है।

परिस्थिति की अनुकूलता के विषय में विकासवादियों का कहना है कि साधारणतः इस संसार में जीवित रहना कुछ कठिन नहीं है। हाँ, इसमें समयानुकूल उचित रीतियों को अंगीकार करने का स्वाभाविक चातुर्य होना चाहिए। झुण्ड के झुण्ड वृक्षों, पशुओं और मनुष्यों ने यह कौशल प्राप्त किया है, वे तथा उनके वंशज भी जीवन-संघर्ष के संग्राम में सफल हुए हैं। अतः जिस किसी ने जीवित रहने की कला प्राप्त की

है, वही ऋषि है ; समस्त संसार उसके साथ एक स्वर हो जायगा, क्योंकि वह विश्व के साथ एक स्वर हुआ है। इस तुच्छ इच्छापुंज अहंकार को त्याग करके सबसे अभेद होनेवाले पुरुष के आगे बाधायें कैसे उपस्थित हो सकती हैं ? परन्तु लोग विज्ञान के इस नियम का दुरुपयोग करने पर तुले रहते हैं। केवल परोपकारवृत्ति का बालक, परोपकारवृत्ति सम्पन्न साधक ही जीवित रह सकता है।

परोपकारवृत्ति क्या है ?

क्या इसका यह अर्थ है कि जिसको लोग आशा करते हैं, जो लोगों को रुचिकर, इच्छानुकूल और उपयुक्त मालूम होता है, हम भी निरन्तर उन्हीं बातों को खोजते रहें ? क्या परस्पर समझौता-वृत्ति का कौशल इतना ही है कि हम अपने आप को लोगों की सम्मतियों के अनुकूल बना डालें। अथवा क्या मनुष्यमात्र की सेवा का यह अर्थ है कि हम अपने को खुलकर खेलने दें ?

नहीं, सच्चा व्यक्तिवाद ही एकमात्र सच्ची परोपकार वृत्ति है। जो अपने आपको आनन्द और प्रेम के साथ भले प्रकार एकस्वर बनाये हुए है, जो सत्य को, जैसा उसे अनुभव हुआ है, बिना किसी रू-रियायत वा लोकमत के प्रभाव के बिना तोड़-मोड़ किये वैसे का वैसा ही स्पष्ट वर्णन करता है; केवल वही अन्त में जीवन-संघर्ष में विजयी होता है।

जब कोई नया और विचित्र मालूम होनेवाला विचार तुम्हारे हृदय को मथ रहा हो, तो विश्वास रखिये कि तुम्हारे आसपास वाले सहस्रों हृदयों में भी कुछ वैसी ही भावनायें जाग्रत हुई होंगी, भले ही उन्होंने उस विचार को ठीक उस ढंग से न ग्रहण किया हो। ठीक उस प्रकार जैसे खेत में जब एक तरबूज पकता होता है, तो उसी ऋतु के प्रभाव से अन्य सहस्रों भी पकते रहते हैं। जब पत्ती, पर्ण या पल्लव वृक्ष पर उगता है, अथवा जब कोई पौधा वसन्त ऋतु में भूमि के भीतर से अपना सिर ऊपर उठाता है, तो उसके आसपास हज़ारों-लाखों ठीक

उसी प्रकार बनने की तैयारी में रहते हैं। नूतन, आध्यात्मिक, नैतिक अथवा बौद्धिक जन्म सदैव पवित्र होता है—वैसा ही जैसे माता के गर्भ के भीतर का शिशु। उसे छिपाना मानो ईश्वर के विरुद्ध एक प्रकार का कुफ्र कहना, ईश्वर-निन्दा करना है।

अपनी आत्मा के प्रति सच्चा रहते ही तुम्हें आश्चर्य होगा कि तुम स्वतः सबके प्रति सच्चे हो जाते हो। सत्य और केवल सत्य की दिशा में समझौता करना, उसके लिए त्याग करना, उसके अनुकूल होने ही से निष्पाप होता है। मनुष्यों का, आकृतियों का, उपाधियों का, धन, विद्या और रूपों का सम्मान करना पाषण्ड-पूजा है। सांसारिक बुद्धिमत्ता अज्ञान को ढाँपने का बहाना मात्र है।

"With joy the stars perform their shining ;
And the sea its long Moon silvered roll ;
For self-poised they live, nor pine with noting
All the fever of some differing soul."

"Bounded by themselves and unregardful,
In what state God's others work may be,
In their own tasks all their powers pouring
These attain the mighty life you see"

" Resolve to be thyself, and know that he
Who finds himself loses his misery."

अर्थ :—

"प्रसन्नता के साथ तारागण अपना चमकने का कार्य कर रहे हैं,
और सागर अपनी रुपहली चाँदनी भरी लम्बी-लम्बी लहरें ले रहा है;

क्योंकि वे अपने आप में निर्द्वन्द्व रहते हैं और अपने से भिन्न किसी जीव के समस्त चिन्तारूपी ज्वर को देखकर क्षीण नहीं होते हैं।"

"ईश्वर के अन्य कार्य किस अवस्था में हो सकते हैं, इस ओर ध्यान न करके और अपने में ही वृत्ति जमाकर वे अपने ही कामों में अपना सारा बल खर्च कर देते हैं जिससे वे उस महान् जीवन को जिसको तुम देख रहे हो, प्राप्त होते हैं।"

"तू अपने आप में आने (स्थित होने) का निश्चय कर और यह जान कि वह जो अपने आप (निज स्वरूप) को पा लेता है, वह ताप वा दुःख से रहित हो जाता है।"

चाहे जीवन हो या मरण, मैं केवल सत्य की ही परवाह करता हूँ। चाहे पाप हो या शोक, मैं अन्तरात्मा के प्रति सच्चा रहूँगा।

O Truth, I love Thee, O Love, I am true to Thee,

ऐ सत्य! मैं तुझसे प्रेम करता हूँ; ऐ प्रेम! मैं तेरे प्रति सच्चा हूँ।

कार्य-कर्त्ताओं, देश-सेवकों के हृदय में एक बड़ा भारी अकल्याणकर भाव यह रहता है कि वे कोई न कोई काम पूरा करने, दूसरों को कोई न कोई प्रत्यक्ष परिणाम दिखाने के लिए आतुर और चिन्तित रहते हैं, वे चाहते है कि उनके रजिस्टरों में उनके मत के अनुयायियों और समर्थकों की अधिक से अधिक सख्या दर्ज हो जाय। प्रत्यक्ष नाम और गिनती दिखाने की चिन्ता ही सारे अनर्थ पैदा करती है। एक मृत शरीर में इतना काफ़ी विष हो सकता है कि उसके संसर्ग से समूचा राष्ट्र रोग ग्रसित हो जाय, परन्तु क्या इससे मृत शरीर की महत्ता सिद्ध होती है? कभी-कभी कुछ सम्प्रदायों में ऐसी ही संक्रामक फैलानेवाली व्यापक शक्ति दिखाई देती है।

लोग अपने लगाये हुए वृक्षों को फलते-फूलते देखने तथा उनके फल खाने के लिए आवश्यकता से अधिक व्यग्र और आतुर रहते हैं। इससे विश्वास की कमी और स्वार्थ-परता प्रकट होती है। ईसा, नानक और अन्य अनेक महापुरुषों ने अपने शरीरों को मानो खाद बनाकर गला डाला जिससे उनके कई पीढ़ियों पश्चात् उनके धर्म-वृक्ष में सुन्दर फूल और फल खिलने लगे।

कुछ वक्ताओं के मन में पुच्छल तारों की भाँति अपने पीछे एक दिखावटी और आकर्षक पूछ-सी लगाने की बड़ी लालसा रहती है, चाहे इस भारी भरकम थोथी पदावली में इतनी लम्बाई-चौड़ाई होने पर भी वास्तविक क्रियाशक्ति कुछ भी न हो। वास्तविक तथ्य के बदले यह भारी मेघावृत संग्रह (nebulous appendix), चाहे लम्बाई और डील-डौल में कितना ही बड़ा क्यों न हो, कुछ भी असली वज़न (प्रभाव) नहीं रखता।

आतशबाजी के तमाशे की ओर झुण्ड के झुण्ड मनुष्य आकर्षित होते हैं, परन्तु खेल समाप्त होने पर कहीं कोई चिह्न शेष नहीं रहता। भला, क्या इस आतशबाज़ी की रोशनी में उछल-कूद मचाने-वाले चंचल जैक को सुधारने की बात सोची जा सकती है। हमारे काम का श्रेयस्कर प्रकाश तो वह है जो निरन्तर एक धार से प्रज्वलित रहता है, फिर वह हो चाहे छोटी से छोटी मोमबत्तियों का।

अपने गुरुत्वाकर्षण के केन्द्र को अपने से बाहर मत स्थिर करो। चरित्र-निर्माण के लिए शुद्ध प्रेम और स्वार्थ-त्याग की आवश्यकता होती है, परोपकार तो एकदम परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

As journeys the Earth, her eye on the Sun
through the heavenly spaces,
And radiant in azure, or Sunless, swallowed
in tempests.

Falters not, alters not, journeying equal sunlit
or storm girt
So, Thou, Son of Earth, who hast force, Goal,
add time, go still onwards.

अर्थः—जिस प्रकार पृथिवी सूर्य पर अपनी दृष्टि जमाये आकाश
मंडल में भ्रमण करती है।
और नील गगन में उज्ज्वल हो या सूर्यविहीन, अथवा प्रचण्ड
वायु में ग्रस्त होकर भी
न कभी लड़खड़ाती और न चाल बदलती है, वरन् सूर्य से
प्रकाशित अथवा
झंझावात से आच्छादित (Storm-girt) होने पर भी समान
गति से करती है विचरण।
उसी प्रकार तू, हे पृथ्वी-पुत्र ! है जिसके पास शक्ति,
ध्येय तथा समय आगे आगे बढ़ता जा।

भारत में ऐसी प्रवृत्ति है कि कार्य्यकर्ता की किसी एक दिशा की सेवायें उसकी दूसरी दिशा के अवगुणों के कारण अस्वीकृत कर दी जाती हैं। उदाहरणार्थ, उपदेशक के उपदेशों को इसलिए अस्वीकार करना, कि उसके जीवन-यापन का व्यक्तिगत ढंग सब को पसन्द नहीं आता। इस प्रकार इस देश में सहयोग असम्भव-सा हो गया है। यह प्रवृत्ति ऐसी है कि जैसे गाय का दूध इसलिए अस्वीकार कर दिया जाय कि गाय सवारी के काम नहीं आती और घोड़ी पर इसलिए सवार न हुआ जाय कि वह दूध नहीं देती।

विद्वानों ने अपने निरीक्षणों द्वारा बतलाया है कि जीवन की दौड़ "तेज दौड़नेवालों" के लिए नहीं और न संग्राम शक्तिशालियों के लिए है, उनका विजयी होना सदा अनिवार्य भी नहीं, विजय तो उनकी निश्चित है जो इकट्ठा रह सकते हैं, संगठन कर सकते हैं।

मनुष्य जाति में वह संगठन कैसे संभव हो ? जो संगठन केवल संगठन के उद्देश से किया जाता है वह अवश्यमेव असफल होगा। हमारे ही शरीर की भाँति प्राकृतिक पिण्डों का कार्य चेतनाहीन अवस्था में चलता है। विज्ञान मात्र पारस्परिक साहाय्य और सहयोग, एकता तथा सहकारिता से प्रकट हुआ है, किन्तु वैज्ञानिक साथ ही साथ एक ही युग में रहे हों, यह कोई आवश्यक बात नहीं। एकमात्र सत्य के प्रति दृढ़ निष्ठा होने ही से विज्ञान-वादियों का संगठन होता है। सारे संसार भर में बच्चों का एक सामान्य व्यावहारिक धर्म है प्रेम, खेल और पवित्रता ! बच्चों में ऐसी एकता कहाँ से आती है, स्वभावतः प्रत्येक बच्चा अपनी प्यारी आत्मा के प्रति सच्चा होता है। अपने साथियों द्वारा अच्छे समझे जाने की इच्छा प्रायः हमारे चरित्र की सच्चाई को बहुत कुछ नष्ट कर देती है। यही इच्छा भीतर-बाहर अनमेल कपटी समाज की नीव है। जो भारी दबाव, हमारे ऊपर ऐसे लोगों को प्रसन्न रखने की इच्छा से पड़ता है जिनके स्वभाव अनियमित और उलटे होते हैं, प्रायः हमको बहुत सी ऐसी बातों की ओर ले जाता है जिनको हम अन्यथा करने की इच्छा तक न करते। मद्यपान की टेव प्रायः मद्य पीनेवाले मित्रों के प्रति आदर-भावना और सहानुभूति से पड़ जाती है।

सत्य ही भलाई है। सत्य का अनुसरण ही भलाई करना है। सत्य तुम्हें दृढ़ बनाता है। सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनाता है। अपने प्रति नियमबद्ध होने से बाह्य सत्ता और कानून से स्वतन्त्रता होती है। यही आत्मसम्मान है। पशुबल औचित्य को सिद्ध नहीं करता, वरन् जो कुछ उचित है वह दृढ़ता से अपने आप सिद्ध हो जाता है और दृढ़ता ही बल या शक्ति का दूसरा नाम है। जो निर्बल है, वह नाश हो जायगा। जो भगवान् को स्वीकार है, उसी के द्वारा हम उसका उद्देश्य जान सकते हैं। 'प्रकृति की पुस्तक' में मानो 'ईश्वर' ने स्वयं अपने हाथों से निर्भ्रान्त और स्पष्ट सत्य लिखा है। "निर्बलता के अतिरिक्त संसार में और

कोई पाप नहीं है" और यह निर्बलता अज्ञान से उत्पन्न होती है।

जो दृढ़तापूर्वक स्थिर रहता और उन्नति करता है, उसे अवश्यमेव भगवदाशयानुकूल होना चाहिए। जो कुछ है, केवल उसकी अनुभव-सिद्ध सामान्यव्याप्तिही तो नियम हैं। प्रकृति की धार्मिक पोथी में हमें यह विधान स्पष्ट मिलता है—"जो कुछ उचित है, वही देर या सवेर सबल हो कर अपना समर्थन प्राप्त करेगा। सत्य दुर्भेद्य है। वह बुलबुले की नाईं छूने से टूट नहीं सकता! नहीं, तुम चाहो उसे दिन भर चौगान की गेंद की नाईं ठोकरें लगाते रहो, पर वह सायंकाल वैसा का वैसा गोल हो जायगा। ईश्वर विश्व पर शासन करता है, और शक्तिसम्पन्न है। नहीं, नहीं, सर्वशक्तिमान् सत्य ही विजय पाता है। सत्य से चकराओ नहीं. और न भयभीत हो और अपने पूर्ण अन्तःकरण से कहो—"अहं ब्रह्मास्मि" "मैं ईश्वर हूँ।"

केवल वह दल जो सत्य का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिपादन करता है, अनन्त शक्ति के साथ अपेक्षाकृत अधिक एकस्वर होकर कार्य्य करता है, अपने भीतर उस सर्वशक्तिमान् को अधिक प्रकट करता है; वही सफलता और श्रेष्ठता और अनुभूति पाता है। सत्य का ज्ञान शक्ति और विजय दिलाता है। देहाध्यास (देहाभिमान, चाहे ब्राह्मणपने का हो चाहे संन्यासपने का) तुम्हें एक चमार—एक क्षुद्र शूद्र, चमार बना देता है। यही चर्मकार वृत्ति अथवा चण्डालपन है जिसके विरुद्ध श्रुति बार-बार तुम्हें सचेत करती है।

एक सच्चा आत्म-संयमी मनुष्य संन्यास के पवित्र भाव को चर्मकार वृत्ति के व्यापार में भी प्रयुक्त कर सकता है। कोई व्यापार, पेशा, या उद्योग-धन्धा अपनी ओर से तुम्हें शूद्र नहीं बनाता। राष्ट्रीय वृक्ष के मूल हैं स्त्रियाँ, बच्चे, और शूद्र जिन सब की उचित शिक्षा और रक्षा की ओर भारत में उपेक्षा रहती है। नाम मात्र के उच्च वर्ण तो उस सर्वोच्च स्थित वृक्ष के फलमात्र कहे जाते हैं।

हम वृक्ष के फलों की ही रखवाली में सारा समय नष्ट न करदें। मूल पर भी ध्यान दें उसे खाद दें और भले प्रकार सींचें।

प्यारे सुधारको! धनिकों की रुचियों की गुलामी से तुम्हारा व्यक्तित्व, सम्भवतः कुछ काल के लिए ऊँचा उठ जाय, परन्तु सत्य का प्रसार तो दीन-हीन जातियां, बालकों और स्त्रियों तथा ऐसे ही असभ्य लोगों द्वारा होगा। इतिहास यही साक्षी देता है। उपदेशकों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जब कभी सरकारी पदाधिकारी उनके व्याख्यान सुनने आते हैं, तो वे अपनी श्लाघा करने लगते हैं। बेशक, यह सत्य है कि सरकारी नौकर आजकल इतर मनुष्यों से कुछ अधिक समझदार होते हैं, और कुछ काम के सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु राष्ट्र के उत्थान की आशा उनसे नहीं की जा सकती। जिन लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता कौड़ियों के मोल बेच दी है, (चाहे वेतन बड़ा क्यों न हो), आजकल रात-दिन कलम घिसते रहने की अनिवार्य बुराई से जिनकी जीवन-शक्ति नष्ट हो चुकी है, जिनका बल कार्य-भार से चुस गया है, उन आदरणीय पाषाण के ठाकुर जी महाराजों को अपने पूजा-योग्य एकांत और श्रेष्ठ अकर्मण्यता के सिंहासन पर बैठे रहने दो। उन्हें चापलूसी भरे मोहिनी रागों, सुखकर लोरियों और अपने नौकरों की सेवा-पूजा में आनन्द लूटने दो, किन्तु वास्तविक पुनरुत्थान तो मूल, समाज के उस नम्र-हृदय मूल ही से प्रारम्भ होगा।

भारतवर्ष की नित्य इतनी हलचलों के असफल होने का मुख्य कारण यह हुआ है कि कार्यकर्ता अपनी सारी शक्ति फलों और पत्तियों को (कुलीन और सभ्य समाज) सींचने में ही व्यय करते रहे हैं। यदि तुम इन दीन-हीन गरीबों की सेवा की बात सोचो तो लोग तुरन्त तुम्हें झिड़केंगे, क्योंकि उनकी दृष्टि में इन पद-दलितों की कोई गिनती ही नहीं। परन्तु याद रखिये—नाचीज़ शून्य भी मूल्य में दसगुना वृद्धि कर सकता है यदि हम उसे १ के सार्थक अंक की दाहिनी ओर

रख दें। बस, अपने आपको इस १ के सार्थक अंक से अथवा दाहिनी ओर वाले शून्य से तदात्म कर दो। तत्त्वमसि–तुम हो वही।

कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ, बालक और शूद्र अधिकारी (ब्रह्म विद्या के पात्र) नहीं है। यही वह दृष्टि-बिन्दु है जिसने वेदान्त को एक धार्मिक सिद्धान्त ही बनाये रखा। उसे व्यवहार में नहीं आने दिया। वेदान्त की महत्ता मानी गई। पर उसका व्यवहार सन्देहात्मक ही रहा।

यदि प्रत्येक बालक सूर्य्य के प्रकाश और वायु का अधिकारी है, तो वह आध्यात्मिक प्रकाश और वायु का अधिकारी क्यों न होगा? ब्रह्मविद्या का द्वार किसी के लिए भी बन्द नहीं किया जा सकता। अज्ञान और शक्तिहीनता के तहखाने और बन्द कोठरियों को जड़ से ढा दो, जिससे दिव्य प्रकाश और वायु सबका कल्याण कर सके।

नैतिक आदेश लोगों में आध्यात्मिक दारिद्र्य पैदा करते हैं। ऐसे आदेशों से इन पागल उपदेशकों का उद्देश्य कभी सिद्ध नही होता, वरन् उल्टी हानि होती है, क्योंकि अपने आपको और दूसरों को वास्तविक तत्त्व का ज्ञान कराने के स्थान में वे धर्म के बाह्य आडम्बर पर अधिक जोर देते हैं।

कोई मनुष्य अपने ज्ञान के विरुद्ध नहीं जा सकता, कोई जानबूझ कर कुयें में न कूदेगा। 'यह करो', 'यह न करो', ऐसे विधि-निषेधात्मक आदेशों से मनुष्य में पशुत्व जाग्रत् होता है। जब एक छोटे से बालक या बालिका से यह कहा जाता है—"तुझे यह अथवा वह करना होगा", तब उस बालक या बालिका की बुद्धिशीलता को ठेस लगती है और वह अपमानित एवं उपेक्षित होने के कारण विद्रोह पर उतारू होती है। हमारे 'अवश्य कर्त्तव्यम्' आदेश घोड़े (पशु-प्रवृत्ति) को सवार (चिच्छक्ति) के बिना हाँकने के समान हैं। हम बच्चों पर शासन करने की चेष्टा में उन्हें विद्रोह की भावना सिखा देते हैं—स्वयं उनकी बुद्धि

जिसे त्याग देना चाहिए, मनुष्य की यही लालसायें हैं। 'सीधे देखो'— इसका अर्थ यह है कि जिस निर्भयता से, बिना किसी झिझक के तुम वृक्षों और नदियों की ओर देखते हो, ठीक उसी उत्साह से प्रत्येक व्यक्ति की ओर देखो अथवा जैसे बच्चे हम लोगों को देखते हुए भी हम में किसी व्यक्तित्व का आरोप नहीं करते, जैसे मानो किसी ग़ैर को न देखकर अपने आप को देख रहे हों, वैसे ही हमें देखना चाहिए। बच्चे जो जीवन को खेल की भाँति व्यतीत करते हैं, उसके नियमों और सम्बन्धों को उन मनुष्यों से अधिक सचाई से पहचानते हैं जो समझते हैं कि वे अनुभव द्वारा अथवा असफलताओं के द्वारा बच्चों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् हो गये हैं। बिच्छू घास (nettle) को भी बिना झिझक के पकड़ो, तो वह कोई हानि न पहुँचायगी, किन्तु यदि उसे केवल उँगली से छू भर दो, तो वह त्वचा में जलन सी उत्पन्न कर देगी। बहुत से अच्छे कार्य्य-कर्ता ऐसे होते हैं जिनकी आपस की एकान्त बातचीत प्रायः खुफिया पुलिस और गुप्तचरों से भरी रहती है। वे मन में अपने को बड़ा सतर्क और चतुर मानते हैं। ऐसे योग्य सुधारकों से मैं कहना चाहता हूँ, बेशक वे चोर हैं। प्यारे गुप्तचरो! प्यारे भेदिया! तुम्हारा पूर्ण स्वागत है, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। मैं तुम्हारे पूर्व वेतन से भी (यदि कोई हो) तुम्हें अधिक वेतन दूँगा। कृपाकर मेरे रहस्य का पता लगाओ। मै स्वयं विनय करता हूँ कि मेरे भेदों को खोल दो, और जो कुछ मेरे पास है, वह सब मैं तुम्हें सौंप दूँगा, तुम्हारी समस्त इच्छायें बड़ी विचित्रता से पूर्ण कर दूँगा, तुम्हारी सभी ज़रूरतें पूरी हो जायँगी; तुम और दुःख नहीं भोगोगे, तुम्हारी गरीबी दूर हो जायगी, राजे और महाराजे तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे। तुम्हारा भेद खोलनेवाला हृदय धन्य है! आओ तो मेरे पास!

काम तो स्वास्थ्य की आवश्यकता-पूर्ति के लिए प्रत्येक निरोगी मनुष्य को करना ही पड़ता है। बच्चे को काम, कोई प्रयोजन नहीं

होता, किन्तु फिर भी पृथ्वी पर के अत्यन्त उद्योगशील जीवों में उसकी गिनती है। वेदान्त तुम से यही चाहता है कि तुम खूब श्रम करो, वीरों की नाईं अपना कर्तव्य पालन करो, परन्तु किसी घटना विशेष पर अपने आनन्द को निर्भर मत करो। आनन्द की उमंग से भर कर हर एक चोट मारो और आनन्द के सिवा वृथा और किसी उद्देश्य पूर्ति के पीछे मत पड़ो।

तुम जो अकेले सत्य पर डटे हो, इस बात से मत डरो कि विशाल बहुमत तुम्हारे विरुद्ध है। देखो, पुराणपंथी अज्ञान का यह दिखावटी बहुमत प्रातःकालीन ओस-कणों के उस जमघट के समान है, जो ताज़ी पत्तियों और घास के हरे-भरे डंठलों पर जम जाता है। यह नश्वर बहुमत तो ऐ सूर्य्य! केवल तुम्हारे स्वागत के लिए चमक रहा है। सत्य के साथ तदात्म हो जाओ। इस अनन्त ब्रह्माण्ड में से यदि मुट्ठी भर लोग तुम्हारा विरोध करते हैं, तो उससे क्या? बहुमत अब भी तुम्हारे पक्ष में है। चट्टानें, वृक्ष, नदियाँ, सूर्य और तारे सबके सब तुम्हारे साथ हैं। काल तुम्हारे साथ है। दिन तुम्हारा है, शताब्दियाँ तुम्हारी हैं। अनादि काल तुम्हारा है। सर्वव्यापिनी प्रकृति तुम्हारे साथ है। तुम स्वयं विरोधियों को अपने चारों ओर खड़ा कर लेते हो, वे तुम्हें नहीं घेर सकते। संयोगों को तुम घेर लो, उन्हें अपना कैदी बना लो।

आवश्यकता है

किसकी? सुधारकों की,
दूसरों के नहीं, किन्तु अपने आप के,
विश्वविद्यालय के उपाधि-धारियों की नहीं,
किन्तु अहंभाव के विजेताओं की!
आयुः—दिव्यानन्द पूरित तारुण्य
वेतनः—ईश्वरत्व

शीघ्र निवेदन करो:—
विश्वनियन्ता से
अर्थात् अपनी ही आत्मा से,
दासोऽहं भरी दीनता से नहीं,
किन्तु विश्वनियामक को निश्चयात्मक आदेश देते हुए—
ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

अरण्य-संवाद

[संख्या ४]

कहानियाँ

ईश्वर तुम्हारे भीतर से काम करने लगे। बस, फिर कोई कर्तव्य न रह जायगा। ईश्वर को अपने भीतर प्रकाशित होने दो। ईश्वर तुम्हारे द्वारा प्रकट हो। ईश्वर में रहो-सहो, ईश्वर खाओ, ईश्वर पिओ, ईश्वर की ही साँस लो। सत्य का अनुभव करो, और अन्य वस्तुयें अपने आप ठीक हो जायँगी। स्वर्गीय राज्य में रहो, वह तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा ही स्वरूप है, अन्य सभी वस्तुयें स्वतः प्राप्त हो जायँगी।

१—लार्ड बायरन

उसके भीतर स्वतंत्रता की भावना काम करती थी। जब वह विश्वविद्यालय में पढ़ता था, तो जिस कक्षा में वह था, उस कक्षा की एक परीक्षा में निम्नलिखित विषय पर निबन्ध लिखने के लिए कहा गया—"ईसा ने किस विचित्र योग शक्ति से किसी विवाह के प्रीतिभोज पर पानी को मदिरा में बदल दिया था?" ओह, कुछ परीक्षार्थियों ने कैसा परिश्रम किया! नियत समय में कुछ विद्यार्थियों ने लम्बे-चौड़े किस्से लिख डाले कि "मेहमान कैसे-कैसे वस्त्र पहने हुए थे," "भोजन किस भाँति परोसा गया था" "ईसा कैसे दिखाई देते थे" इत्यादि। इसी प्रकार वे उस निबन्ध को विस्तार देते गये। पर इस अवधि में बायरन कभी छत की ओर देखता रहा, कभी अन्य विद्यार्थियों के मुखों की ओर ताकता और कभी-कभी उसकी सीटी बजाने की इच्छा हो उठती। जब समय समाप्त हुआ और अध्यापक निबन्ध की कापियाँ जमा करने आया; तो बायरन से उसने कटाक्ष किया—"तुम तो थक गये होगे,

लिखने में सचमुच बड़ा श्रम हुआ है। वह जानता था कि बायरन की कापी कोरी होगी।" किन्तु बायरन ने कहा—"एक मिनट ठहर जाइये" और चटपट एक पंक्ति घसीट कर कापी अध्यापक को दे दी। प्रायः तीन सप्ताह पश्चात् परिणाम घोषित हुआ, और कुछ निबन्धों की बड़ी प्रशंसा की गई, किन्तु यह जानकर सब आश्चर्य में डूब गये कि बायरन को प्रथम पुरस्कार मिला। विद्यार्थियों को बायरन के निबन्ध की श्रेष्ठता का विश्वास दिलाने के लिए अध्यापक ने उसे कक्षा में पढ़ सुनाया; एक पंक्ति का निबन्ध था—"जल ने अपने स्वामी को देखा, तो लज्जा के मारे मुख पर लाली दौड़ गई।" कितना स्वाभाविक ढंग था! यह छोटी सी पंक्ति हृदय से निकली थी, और सभी स्वाभाविक रचनाओं की भाँति थी सर्वांग सुन्दर, स्वतन्त्र, और कवित्वमय! वह हृदय की रचना थी।

"The eye—it cannot choose but see,
We cannot bid the ear to be still;
Our bodies feel were'r they be
Against or with our will.
Think you "Mid all this mighty sum
Of things for ever speaking
That nothing of itself will come
But we must still be seeking?"

अर्थः—नेत्र देखने के सिवा और क्या करें?
हम कानों को चुप नहीं कर सकते।
शरीर हमारे चाहे जहाँ रहें,
हमारी इच्छा के अनुकूल या प्रतिकूल भान करते ही रहेंगे।

   

क्या तुम सोचते हो—

इस नित्य भान होने वाली चेतन स्वरूप वस्तुओं के
महा संग्रह में से—
कोई भी वस्तु स्वतः प्राप्त न होगी ?
और हम को सर्वदा खोजते ही फिरना पड़ेगा ?

वर्डसवर्थ

२—उस्ताद गवैया

किसी गिरजाघर में एक सुन्दर बाजा था। वास्तव में वह बाजा ऐसा बढ़िया था कि संरक्षक उसे किसी नौसिखिये को छूने भी न देता था। एक दिन, जब कि गिरजे में प्रार्थना हो रही थी, एक अनजान मनुष्य, मामूली कपड़े पहने हुए आया और बाजा बजाने की प्रार्थना करने लगा, परन्तु उसे उसके पास तक जाने की आज्ञा न दी गई। पादरी साहब उसे पहचानते न थे, और चूँकि वह उनकी अत्यन्त प्रिय वस्तु थी, वे उसे कैसे बजाने देते ? ज्योंही प्रार्थना समाप्त हुई और गायक ने उसे बन्द कर दिया त्योंही वह मनुष्य चुपके से बाजे के पास पहुँच गया। उसने बाजे पर अपना हाथ रखा ही था कि बाजे ने अपने स्वामी को पहचान लिया। उससे ऐसा मधुर सुर निकला कि यद्यपि श्रोता उठ खड़े हुए थे और जाने को तैयार ही थे कि उनके पैर रुक गये, ऐसा दिव्य संगीत उन्होंने कभी सुना ही न था। उसकी ध्वनि ने उन्हें मोहित कर लिया, वे मंत्र मुग्ध से हो गये। लो, यह आश्चर्य-जनक ताल सुर निकालनेवाला, गायक था कौन ? स्वयं उस बाजे का बनानेवाला उस्ताद।

हम अपनी आत्मा को, ईश्वर को, दिव्य प्रेम को अपने भीतर काम करने का अवसर ही नहीं देते। हमें अपने शरीर का और अपने मन का कितना ध्यान रहता है ! और यह प्रत्यक्ष है कि ऐसी दशा में हमारे

भीतर से केवल साधारण सुर ही निकल सकते हैं। अरे, उस स्वामी को तो बाजा बजाने दो, जिस क्षण प्यारे के हाथ तारों को छुयेंगे, उसी क्षण ऐसा दिव्य सुर फूट निकलेगा जैसा तुमने स्वप्न में भी न सुना होगा, आश्चर्य-जनक प्रकाश और परमानन्द बहने लगेगा, दिव्य आलाप मधुरतम संगीत, स्वर्गीय और स्वतंत्र गान स्वतः प्रवाहित होने लगेगा।

'God of the granite and the rose,
Soul of the sparrow and the bee,
The mighty tide of being flows
Through all its channels, Love, from Thee
"It springs to life in grass flowers,
Through every thread of being runs
Till from creation's radiant towers
In glory flames, in stars and suns.
"God of the granite and the rose,
Soul of the sparrow and the bee,
The mighty tide of being flows
Through all its channels back to Thee.
" Thus round and round the current runs
A mighty sea without a shore
Till man with angels, stars and suns
Unite in love for ever more."

Lizzie Doben

अर्थः—ऐ पुष्प और पाषाण के ईश्वर!
ऐ पक्षी और कीट-पतंग के प्राण!
ऐ प्रेम स्वरूप! अस्तित्व की यह महान् लहर
नाना मार्गों द्वारा तुम्ही ही से निकल कर बह रही है।
घास-पात में यह जीवन बन कर निकलती है,

और प्राणी की रग-रग में होकर दौड़ती है,
यहाँ तक कि सृष्टि के देदीप्यमान शिखरों से लेकर
तारों और सूर्यों तक अपने तेज से प्रकाशित होती है।
ऐ पुष्प और पाषाण के ईश!
ऐ पक्षी और कीट-पतङ्ग के प्राण!
ऐ प्रेम स्वरूप! अस्तित्व की यह महान् लहर
नाना मार्गों द्वारा पुनः तुझ ही में आ मिलती है।
इस प्रकार बारम्बार यह लहर
तटहीन महान् सागर में बहती है,
यहां तक कि मनुष्य, देवता, तारे और सूर्य—
सब एक प्रेम-सागर में नित्य के लिए घुल मिल जाते हैं।

—लिजी डॅविन

:—यमराज से चालाकी

किसी समय में एक ऐसा चतुर मनुष्य था कि वह अपने आपको अनेक रूपों में बदल सकता था, और वे रूप इतने सच्चे होते थे कि असली और बनावटी रूपों में पहचान करना बड़ा दुस्साध्य था। उसे पता चला कि यमराज का दूत उसे लेने आ रहा है। वह संकट में पड़ गया और सोचने लगा कि दूत से बचने के लिए क्या करना चाहिए? अन्त में उसने एक ऐसा उपाय निकाला जिसकी चतुराई की प्रशंसा की जा सकती है। उसने अपने एक दर्जन रूप धारण कर लिये। जब यमदूत आया तो वह भी यह न जान सका कि वास्तविक व्यक्ति कौन है? अतः वह चुपचाप लौट गया। दूत यमराज के पास पहुँचा और पूछने लगा कि क्या करना चाहिए। कुछ सलाह करके वह फिर पृथ्वी पर लौटा और इस मनुष्य को ले जाने का प्रयत्न करने लगा। उसने कहा—"प्रियवर! तुम सचमुच बड़े चतुर हो, अनेक रूप धारण करने की

विद्या तुम्हें खूब आती है, तुम इसमें सिद्धहस्त हो किन्तु एक बात ऐसी है जिसमें तुमने भूल की है। बस एक ही त्रुटि रह गई है।" असली आदमी झट से उछल पड़ा और एकदम पूछने लगा—कहाँ पर ? किस बात में ? और दूत बोला—"ठीक, इसी बात में !" बस, इस प्रकार उन मूक मूर्त्तियों में से यमदूत ने उस चतुर मनुष्य को पकड़ लिया। केवल इतना पूछना कि क्या "मैं ठीक हूँ ?" ही तो गलती है। प्यारे! इस पूछनेवाले के सिवा तुम असल में और कौन हो सकते हो ? कर्त्ताभाव के अभिमानी उस छोटे से भूत को मृत्युरूप यमराज ने पकड़ लिया।

—o—

४—यह मेरी गाजर है

दुर्भिक्ष था। एक गरीब स्त्री मर गई। यमराज के यहाँ उसकी मरणोत्तर जाँच-पड़ताल हो रही थी। अपने अच्छे और बुरे कर्मों को अलग अलग छाँटते हुए उसे कोई पुण्य कर्म न मिला, मिला तो केवल यह कि उसने एक बार किसी भूखे भिखारी को एक गाजर या शायद मूली ठीक पता नहीं, दान दी में थी। यमराज के आज्ञानुसार वही गाजर फिर प्रकट हुई। यही गाजर उसको स्वर्ग ले जानेवाली थी। उसने गाजर को पकड़ लिया और लो, वह गाजर उसे अपने साथ लेकर ऊपर उठने लगी।

उसी समय वह बूढ़ा भिखारी भी न्यायालय में दिखाई पड़ा। उसने स्त्री के कटे-फटे कपड़ों के सिरे को कस कर पकड़ लिया और उसके साथ वह भी ऊपर चढ़ने लगा; तब एक तीसरा क्षमाकांक्षी उस भिखारी के चरण पकड़ उसी प्रकार ऊपर उठने लगा; बस, धीरे धीरे इसी भाँति एक दूसरे को पकड़े हुए लोगों की एक लम्बी पंक्ति हो गई, जो सबकी सब ऊपर उठनेवाली इस गाजर के सहारे चढ़ने लगी। यह कैसे आश्चर्य की बात थी कि इस स्त्री को अपने नीचे लटकती हुई

इन सारी आत्माओं के बोझ का बिल्कुल पता तक न चला। (क्या ऐसी बातें प्रायः स्वप्न में नहीं दिखाई देती हैं ?)

इसी प्रकार ये क्षमाप्राप्त पुरुष ऊपर उठते गये, यहाँ तक कि वे स्वर्ग द्वार पर पहुँच गये। वहाँ जब स्त्री ने नीचे की ओर देखा तो, न जाने किस भाव से प्रेरित हो उसने अपने पीछे आनेवाली आत्माओं से कहा—

"ओ, तुम सब लोग भाग जाओ !
यह गाजर तो मेरी है !"

और ऐसा कहते ही बिना विचारे उन्हें हटाने के लिए ज्यों अपना हाथ हिलाया, लो गाजर छूट गई, और धड़ाम से नीचे गिरी वह बेचारी अपनी उस समस्त पंक्ति को लिये हुए। घटना बहुत ही स्पष्ट ढंग से चित्रित की गई है, तुम स्वयं अपना नैतिक निष्कर्ष निकाल सकते हो।

Equality (V)

The mountain and the squirrel
Had a quarrel
And the former called the latter "Little Brig."
Bun replied.
"You are doubtless very big,
But all sorts of things and weather
Must be taken in together.
To make up a year
And a sphere."
"And I think it no disgrace
To occupy my place.
If I'm not as large as you,
You are not so small as I,

And not half so spry,
I'll not deny you make
A very pretty squirrel track.
Talents differ; all's well and wisely put.
"If I cannot carry forests on my back
Neither can you crack a nut."

समानता (५)

पर्वत और गिलहरी में झगड़ा हुआ।
पर्वत ने गिलहरी को चिढ़ाया—ओ पिद्दी कहीं की !
गिलहरी ने उत्तर दिया:—
निःसन्देह, हो तुम बहुत बड़े !
परन्तु सब प्रकार की वस्तुओं और ऋतुओं से मिलकर
वर्ष, काल और संसार-मंडल बनते हैं।
और मुझे तो अपने स्थान पर रहने में
कोई अपमान नहीं दिखाई देता।
यदि मैं तुम्हारे समान बडी नहीं हूँ,
तो तुम भी मेरे समान छोटे नहीं हो सकते,
चंचलता का तो तुम में नाम निशान नहीं,
मै इस बात से इन्कार नहीं करती कि—
तुम पर गिलहरियों के लिए अच्छी अच्छी पगडण्डियां बन जाती हैं।
योग्यतायें भिन्न भिन्न हैं, पर यहां तो सब अपने अपने स्थान में
ठीक यथा स्थान बिठाये गये हैं।
यदि मैं अपनी पीठ पर जंगल नहीं उठा सकती,
तो तुम भी एक सुपारी नहीं फोड़ सकते।

प्रश्न—स्वामी जी, आप कहते हैं कि हमारी आत्मा ज्ञान-स्वरूप है, अतः कृपया मुझे दिव्यदृष्टि-संबंधी वेदान्त की कोई ऐसी युक्ति बताइ

दीजिये जिससे मैं आनेवाली क़ानून की परीक्षा में सर्वोत्तम पुरस्कार प्राप्त कर लूं।"

उत्तरः—एक राजकुमार बचपन में सरदारों के बालकों के साथ लुका-छिपी (छिप्पन्न लुक्कन) खेल रहा था। उसे बालकों को ढूंढने में बड़ा झंझट उठाना पड़ता था। पास खड़े हुए एक सज्जन ने कहाः—"साथियों को ढूँढने में व्यर्थ इतना श्रम करने से क्या लाभ ? अपनी राजकुमारोचित आज्ञा का प्रयोग करते ही वे तुरन्त इक्ट्ठे हो जायंगे ?" राजकुमार ने उत्तर दियाः—"उस दशा में खेल का मजा चला जायगा, खेल में कोई रस न रह जायगा।" ठीक इस प्रकार, वास्तव में, तुम ही सर्वनियंता, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी ईश्वर हो, तुमने हंसी खेल में अपने ही विषयों (संसाररूपी लुका-छिपी के दुस्तर मार्ग में सर्व प्रकार का अध्ययन और अन्वेषण) की खोज प्रारम्भ कर दी है, अतः यह उचित न होगा कि तुम उस शक्ति का प्रयोग करो जिससे उस समस्त खेल का मज़ा ही जाता रहे। उस भूमिका में जहाँ भूत, भविष्य, वर्तमान तथा सहस्रों सूर्य्य और तारागण तुम्हारी अपनी आत्मा बने हुए हैं, और जहाँ समस्त वस्तुयें तुम्हारे ज्ञान के महासागर की लहरें और हिलोरें बनी हुई हैं, वहाँ इस क़ानूनी-परीक्षा सांसारिक सफलता को कौन पूछेगा ? यदि तुम दिव्य-दृष्टि पाना चाहते हो, तो तुम्हें इन्द्रियों के क्षेत्र को त्याग देना होगा, उससे ऊपर उठना होगा जिससे और जिसके लिए तुम वह दिव्य दृष्टि पाना चाहते हो।

मछलियां पकड़ने के लिए जाल बिछाया गया। मछलियां उसमें फंस कर अपने भारी बोझ के कारण जाल को भी ले डूबीं। वेदान्त की सर्वथा अभिनव दिव्य-दृष्टि वह विचित्र मत्स्य है जो आशाओं के जाल को एकदम बहा ले जाता है। वैसे तो विद्या-प्राप्ति की साधारण विधि भी स्वयं उस वेदान्तिक दिव्य-दृष्टि का एक प्रकार मात्र है, क्योंकि उसके द्वारा अध्ययन काल ही हमें अहंकार अथवा द्वैत भाव से अनजाने में छुटकारा मिल जाता है।

एक मुसलमान संत, इमाम ग़िज़ाली, के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि विद्यार्थी-जीवन में, एक रात नित्य की भाँति बहुत परिश्रम करके वह अपने अध्ययन-कक्ष में ही सो गया। स्वप्न में उसे विद्या के देवता ख़्वाजा खिज़र के दर्शन हुए। उन्होंने कहा—मैं तुझे केवल मुंह और कानों में फूंक मार कर ही संसार की सारी विद्यायें प्रदान कर सकता हूँ। पर इमाम ग़िज़ाली ने स्वाभिमान के वीरोचित भाव से इसे अस्वीकार किया। उसके बदले उसने यह वर माँगा कि आधी रात तक पढ़ने के लिए मुझे तेल मिलता रहे। उसने छोटे रास्ते के बदले लम्बा रास्ता पसन्द किया। स्वर्ग में चोरी छिपे पिछले द्वार से प्रवेश करना उसे किसी प्रकार अच्छा न लगा।

कैसा बर्ताव किया जाय—इस विषय में ईश्वर को परामर्श देने की आवश्यकता नहीं। अपनी इच्छाओं के अनुसार काम करने के लिए उससे मत कहो, वरन् अपने आपको उसे अर्पण करके देखो तो सही! परिच्छिन्न आत्मा त्याग दो, झूठी अभिलाषायें त्याग दो, और तुम्हारे शरीर और मन को प्रकाशित होते देर न लगेगी। ज्ञान और सच्ची विद्या—सब की सब भीतर से निकलती हैं, पुस्तकों और बाहरी मस्तिष्कों से नहीं। ज्ञानानुसंधान के क्षेत्र में मौलिक काम करने वाले अलौकिक बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति कब अविष्कार और अन्वेषण करने में समर्थ होते है? जब वे सभी प्रकार की चिन्ताओं और हड़बड़ाहट से ऊपर उठ कर, अपने व्यक्तित्व और अन्तःकरण को स्वार्थपरता के भावों से मुक्त करके, अपरिच्छिन्न ज्ञान में डूब जाते हैं। जब मानो उन्होंने अपने आपको पारदर्शी बना लिया, और जब ज्ञान का प्रकाश उनके भीतर से झलक मारने लगा तब उन्होंने पुस्तकों को जगमगा दिया और पुस्तकालयों में उजाला फैला दिया। यह कर्म है। कर्म से राम का अभिप्राय कभी थकाने वाले पिष्टपेषण से नहीं होता। वेदान्त में सदैव कर्म का अर्थ होता है वास्तविक आत्मा के साथ एक होकर हरकत करना और अखिल विश्व के साथ

एक स्वर हो जाना। उस परम अद्वितीय तत्व के साथ निस्स्वार्थ संयोग प्राप्त करना ही एकमात्र सच्चा कर्म है। पर प्रायः लोग इसे अकर्मण्यता और आलस्य के नाम से पुकारते और बदनाम करते हैं। श्रमसाध्य एक अत्यन्त घोर कर्म भी जब वेदान्त की भावना से किया जाता है, तो वह भी आनन्द और खेल का भाण्डार मात्र बन जाता है, उसमें शारीरिक क्लेश और भार का कहीं नाम-निशान भी नहीं रहता। वेदान्त-शिक्षा का सारांश एक शब्द में यह है:—'कुछ न चाहते हुए सदैव काम में जुटे रहना, चिन्ता न रखते हुए भी सदैव कार्य्य-परायण रहना।" ऐ भोले भाले कर्मयोगिन्! सफलता की खोज बन्द कर दो। जब ऐसा करोगे, सफलता तुम्हें अवश्य खोजती फिरेगी।

——:※:——

वायु के प्रति

To Vayu (Breeze).

"Naught stirred around,
Yet hark to that sound,
"Swoo—00" and "Ai-yu !"
Oh, bodiless Vayu !
Pause and come hither
And whisper us whither
Thou speedest along ?
Invisible wending,
The heather tops bending,
Before us thou sweepest,
Behind us thou creepest,
By our ears rushing,
O'er our cheeks brushing,
Gliding by gholefully,

Murmuring dolefully,
Dirges of song,
With "swoooo" and "Ai-yu !"—
Oh bodiless Vayu !
Pause and come hither
And whisper us whither
Thou speedest along."

अर्थः—वायु के प्रति !

हल चल तो कहीं कुछ है नहीं ?
फिर भी सुनो, वह क्या ध्वनि है:—
"सू-ऊ" और "आय-यू"
ओ शरीर रहित वायू !
ठहर और इधर आ,
और हमें कान में सुनाती जा,
कि किधर वेग से तू बह रही है ?
अदृश्य चलती हुई,
और झाड़ियों के सिरों को झुकाती हुई,
तू हमारे सामने रास्ता साफ करती जाती है,
और पीछे से मन्द मन्द चलती है।
हमारे कानों में सरसराती हुई,
हमारे गालों को स्पर्श करती हुई,
दानव के समान उड़ती हुई,
दुःख से शोक भरे राग अलापती हुई,
"सू-ऊ", और "आय-यू" "सू-ऊ-आय-यू"
ओ शरीर रहित वायू !
ठहर और इधर आ,
और हमारे कानों में सुनाती जा,
कहां, किधर तू लपकी जा रही है ?

अरण्य–संवाद

संख्या [५]

प्रेम

"I am the origin and end
Of all this changeful universe,
There is, oh mankind, naught beyond ;
For all is strung on me alone
As are the beads upon the thread.
I am the freshness of the waters,
The splendour of the Sun and the Moon,
The essence of the Holy thought
The sound of sounds, the man in men,
I am the life of life, oh man !"
"All true devotion's centred power,
All being's seed am I, the strength,
The wisdom of the strong and wise,
Lo, those who worship me in truth,
Fulfilling in their acts my laws ;
Regarding me their aim and end,
Their hearts, oh man, dwell then in love
And I to them will always be guide.
From out the surging flood of wrong and
migratory life."



At whose behest doth work intellects ?
At whose command does life subsist ?

By whom enlightened grasps the mind?
And what enlightens ears and eyes
The Ear of ear, the Mind of mind.
The Speech of speech, the Life of life,
The Eye of eye, the Self of self
That eats up Pain and Death as rice.

प्रेम

अर्थः—"इस समस्त परिवर्तनशील विश्व का
मै ही आदि हूँ, और मै ही अन्त
हे मानव जाति! मुझसे परे और कुछ है नहीं;
क्योंकि सब कुछ मुझ ही में पिरोए हुए हैं,
जैसे माला की दाने तागे में पिरोए हुए होते हैं।
जलाशयों में ताज़गी मै हूँ,
सूर्य और चन्द्र का मै तेज हूँ,
शुद्ध संकल्प का मै सार हूँ,
ध्वनियों की ध्वनि, औ मनुष्यों का मनुष्य,
हे नर! प्राण का भी प्राण मै हूँ।"

सम्पूर्ण सच्ची भक्ति की एकत्रित शक्ति,
समस्त अस्तित्व का कारण बीज, बलवानों का
बल और बुद्धिमानों की बुद्धि मै हूँ, सब कुछ
देखो, जो लोग मुझे वास्तव में पूजते हैं,
जो अपने व्यवहार में मेरे नियमों पालन करते हैं,
जो मुझे अपना ध्येय और अपना अन्तिम लक्ष्य
समझते हैं.

हे नर! उन्हीं के हृदय में मै वास करता हूँ,

और मैं उनको पाप और आवागमन के उमड़ते हुए
तूफान से बचाने के लिए सदैव
उनका मार्ग-प्रदर्शन भी करता हूँ।

किस की प्रेरणा से बुद्धियाँ काम करती हैं ?
किस की आज्ञा से प्राण जीवित रहता है ?
किस से प्रकाशित हुआ मन भली भाँति समझता बूझता है ?
तुम्हारे चक्षु-श्रोत्र को कौन प्रकाश करता है ?

वह कान का कान, वह मन का मन,
वह वाणी की वाणी, और प्राण का प्राण है,
वह आँख की आँख, वह आत्मा का आत्मा है,
जो दुःख और मृत्यु को भात के समान भक्षण कर लेता है।

All is Love.

To know is to love Truth
What is Truth ? Tat Twam Asi or Love itself.

सब कुछ प्रेम है।

ज्ञान का अर्थ है सत्य से प्रेम करना।
सत्य क्या है ? 'तत् त्वम् असि—'वह तू है'', तू प्रेम है।

प्रेम ही अपने आप को भिन्न-भिन्न स्तरों में भिन्न-भिन्न शक्तियों के रूप में प्रकट करता है, जैसे रासायनिक प्रीति संग्रथन शक्ति, गुरुत्वाकर्षण, लालच, इच्छा, आकांक्षा, लालसा और महत्वाकांक्षा आदि कम्पन के विभिन्न परिमाणों और शैलियों में वही प्रेम चुम्बक-शक्ति, बिजली, प्रकाश, ताप और ध्वनि आदि अनेक नामों से प्रकट होता है। आजकल भौतिक परमाणुओं के विषय में सर्वापेक्षा युक्ततम कल्पना यह है कि वे मात्र शक्ति-केन्द्र है। पंचभूत भी विश्लेषण के अन्त में घनीभूत प्रेम ही ठहरते हैं। दैवी विधान, सृष्टि नियम ही विभिन्नता में अभिन्नता, द्वैत में अद्वैत, नानत्व में एकत्व की खोज करता है और इस प्रकार वह भी

प्रेम का एक रूपान्तर मात्र है। तुम्हारा भेद जानने के लिए उत्सुक गुप्तचरों में, कपट हृदय जासूसों में, अविश्वासी सशयशुक्त मित्रों में, भयानक शत्रुओं में, विश्वासघातक साथियों में कौन सी शक्ति काम करती है ? प्रेम, प्रेम के सिवा और कुछ नहीं। प्रेम के अतिरिक्त संसार पर शासन करने वाला दूसरा और कोई है ही नही। कारलाइल का कहना है, "घृणा प्रेम का ही परिवर्तित रूप है, भय भी एक संकुचित प्रेम है।" अन्यथा प्रेम भय को कैसे जीत सकता ? जंगल में होकर हजार मुहरों की थैली लेकर चलने वाला मनुष्य अपने प्यारे स्वर्ण ही के कारण तो भयभीत होता है। स्वतन्त्र मनुष्य, सब के साथ दिल खोल कर मिलता है। सबके भीतर प्रेम की सर्व साधारण लहर का आनन्द स्वतन्त्र मनुष्य ही भोग सकता है। संसार में प्रेम ही वास्तविक एकमात्र शक्ति है, प्रेम के साथ एकता अनुभव करना ही मोक्ष और निर्वाण है, उस परम प्रेम चेतना की प्राप्ति के निमित्त ज्ञातत: वा अज्ञातत: उद्योग करना ही जीवन है, उस ध्येय को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने की पद्धति को अनुसरण करने के लिए उद्यत रहना ही बुद्धिमानी है, और उस प्रयोजन के निमित्त प्रेम की भिन्न भिन्न शक्तियों की उचित व्यवस्था करना ही पुण्य है।

प्रेम के प्रति न विश्वासघात है और न कोई विश्वासघातक ही होता है। किसी भी मनुष्य का चरित्र विश्वासघातक नहीं होता। किसी मनुष्य के यहूदी, मुसलमान, ईसाई, शूद्र या ब्राह्मण होने के नाते उसकी शक्तियों की सम्भावना के विषय में हमें अपने विचारों को संकुचित करने का कोई अधिकार नहीं है। साम्प्रदायिकता के पक्के गुलामों का भी उद्धार होगा। ईश्वर अथवा सत्स्वरूप परमात्मा तुम्हें प्राचीन परम्पराओं और कट्टरता के दलदल से निकालेगा, अवश्य निकालेगा। कृष्ण ने गोपियों को यथाकथित पतियों के घरों से निकाल लिया था।

मनुष्य की असली आत्मा इस सर्वोपरि प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तुम प्रेम हो। अरे, तुम तो विश्वव्यापी आत्मा हो। तुम तो

वह सुन्दर सुगंधि हो जो कि एक ओर 'लैली' के गुलाबी गालों में चमकती है, और दूसरी ओर मजनूँ के क्षतविक्षत हृदय में धड़कती है। इसी सत्य को व्यावहारिक जीवन में अनुभव करना पवित्रता है। परन्तु वह मनुष्य जो वस्तुओं की खोज में घूमता है, उनके पीछे दौड़ता है, मानो वह उनसे कोई दूसरा है, अपने आप के दो टुकड़े कर डालता है और इस कारण अपवित्र हो जाता है। संकुचित होना और दूर दूर रहना पवित्रता नहीं है, सौन्दर्य्य से भागना और उसका विरोध करना पवित्रता (ब्रह्मचर्य्य) नहीं है। सच्ची पवित्रता तो वह है कि जहाँ सारा सौन्दर्य्य मुझ में समा जाय और मै सब के साथ अपनी आध्यात्मिक एकता यहाँ तक भान करने लगूं, उस एकता में यहां तक आनन्द लेने लगूं कि किसी दूसरे से मिलने की बात करने या उस विषय में सोचने से वियोग की व्यथा होने लगे।

"Speak to him, then, for He hears and Spirit to Spirit can meet,

Closer is He than breathing and nearer than hands or feet.

The Sun, the Moon, the Stars, the hills, and the plains.

Are not these, O Soul !, the visions of Him who reigns ?"

(Tennyson)

अर्थः—"और उसी आत्मा से बोलो, क्योंकि वह सुनता है, और आत्मा से ही आत्मा का मिलाप हो सकता है।

प्राणों के भी वह अति निकट है, और हाथ-पाँव से भी वह अति समीप है।

ये सूर्य, चन्द्र और तारे, पर्वत और मैदान।

ऐ आत्मन्! क्या ये उसी के आभास नहीं हैं,
जो सब पर शासन करता है ?

(टेनीसन)

"Thy voice is on the rolling air,
I hear Thee where the waters run,
Thou standest in the rising Sun,
And in the setting, Thou art fair,
Far off Thou art and ever nigh
I hear Thee still and I rejoice
I prosper circled with Thy voice
I shall not lose Thee, though I die,

अर्थ:—चलती वायु में तेरी आवाज़ है।
जहाँ पानी बहता है, वहाँ मै तुझी को सुनता हूँ।
उदय और अस्त होते हुए सूर्य में तू ही विद्यमान होता है, और तू है अति सुन्दर।
तू नित्य समीप से समीप और दूर से भी दूर है। मै तुझे नित्य सुनता हूँ और आनन्द लेता हूँ।
मैं तेरी आवाज से आवृत्त हुआ उन्नति करता हूँ। चाहे मैं मर जाऊँ, पर क्या कभी तुझे छोड सकूंगा ?

जो कुछ है, सब अच्छा ही अच्छा है। ईश्वर क्या है ? जो उपयुक्त, उचित और ठीक हो। देखो, संसार की गति निरन्तर परिस्थिति की अनुकूलता को लेकर चलती है। अतएव संसार भलाई (धर्म) के प्रवाह के अतिरिक्त और कुछ रह नहीं जाता। जहाँ कहीं लोगों का भूतकालिक कट्टर प्रेम जीते-जागते वर्तमान का विरोध करता है, तो वह अनिवार्य परिस्थिति-अनुकूलता, प्रगति-शील परिस्थिति अनुकूलता का नियम (शक्तिपूर्ण सामंजस्य) शोर-गुल मचाने वाले, आँखों को चकाचौंध

करनेवाले परिवर्तन के साथ प्रकट होता है, जिसे क्रान्ति कहते हैं। वह विकट परिवर्तनों revolutions अपने साथ लाता है।

हम किसी वस्तु का त्याग उस समय तक नहीं कर सकते, जब तक हमें कोई अन्य वस्तु उसके स्थान पर नहीं मिल जाती। उन्नति तो धीरे धीरे होना चाहिए। प्रेम और आसक्ति एक दृष्टि से तो पकड़ने, स्वायत्त करने की प्रवृति है और दूसरी दृष्टि से त्याग. है, त्याग से कुछ कम नहीं है। प्रेम एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर चढ़ता रहता है। प्रेम-पात्र सदा बदलता रहता है, और इस परिवर्तन और विकास की प्रत्येक क्रिया में वह बहुत से पुराने बन्धनों को तोड देता है। धीरे-धीरे अन्त में एक ऐसा समय आता है जब कि मनुष्य साक्षात् प्रेम के साथ प्रेम करने में तल्लीन हो जाता है, उस समय हमारा प्रेम-पात्र प्रत्येक की और सब की आत्मा के रूप में प्रकट होता है, मानों प्रेमी अपनी उस सर्वोपरि आत्मा के साथ फिर वैवाहिक गठ बन्धन में जुड जाता है। इस विवाह (अर्थात् पुनः मिलाप रूपी धर्म) के पश्चात् समस्त विश्व उस सच्चे प्रेमी के प्रेमालिंगन में समा जाता है और प्रत्येक वस्तु उसकी मुट्ठी में आ जाती है। ऐसे मनुष्य को भला किस वस्तु की इच्छा हो सकती है? क्या हम उस दुल्हिन की इच्छा करेंगे जो पहले ही से हमारे प्रेमपाश में बंधी हो?

जब मनुष्य अपनी आत्मा को ही सब कुछ और सब में सर्वरूप अनुभव करता है, तब वह इच्छा नहीं कर सकता, वरन् प्रत्येक वस्तु को अपने ही रूप के समान भोगता है। वह केवल अपने कार्य पर ध्यान देता है और उसे अच्छा समझता है। प्रत्येक पदार्थ उसे अलौकिक आनन्द देता है। प्रत्येक प्राणी, क्षुद्रातिक्षुद्र कण से लेकर आकाश तक, छोटे से छोटे परमाणु से लेकर सूर्य्य तक, धरती पर रेंगने वाले जीवों से लेकर दूर से दूर चमकने वाले तारों तक, सब उसका सम्मान करते हैं, सब उसके महत्व को प्रकाशित करते हैं, सब उसकी स्तुति में भजन

गाते हैं, उसे साक्षात् ईश्वर मानते हैं। ऐसे मनुष्य से इतर कहीं कुछ भी नहीं रहता।

संसार के भूत को अपने ऊपर सवार मत होने दो। मेरे सामने दो पदार्थ है, एक मीठी मटर का छोटा सा फूल और एक कुमारी कन्या। पुष्प का विश्लेषण करने पर उसमें एक विचित्र शक्ति का पता चला है जिसका नाम संग्रथन शक्ति है जो पुष्प के कि भिन्न अंगों को एक में, एकत्र मिलाये हुए है, इसके सिवा कुछ अन्य शक्तियाँ भी हैं जैसे ताप गुरुत्वाकर्षण, चुम्बकत्व आदि। और कुमारी कन्या में भी ये सभी संभव चमत्कार दबे हुए है, विशेष करके उसके उस अङ्ग में जिसे सिर कहते हैं। यहाँ सम्पूर्ण देश और काल समाया हुआ है, सम्पूर्ण विश्व भी उसके अन्तर्गत, उसके आलिंगन में है। सारा विश्व एक अकेली उस गेंद में समाया है जिसे सिर कहते हैं। कैसे? यह सारा विश्व मस्तिष्क में एक संकल्प मात्र है। सारा संसार इस मस्तिष्क में एक कल्पना मात्र है। यदि संसार का यह विचार एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में प्रवेश न करता होता, जैसे गेंद एक जगह से दूसरी जगह फेंकी जाती है; तो यह संसार संसार ही न रह जाता होता। यह माया रूपी स्वप्न, संसार की यह कल्पना, हम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में, एक देश से दूसरे देश में फेंकते रहते हैं, और सारा संसार चलता रहता है, तुम्हारा संसार, तुम्हारा विचार और तुम्हारा बनाया हुआ है। बस, संसार के इस भूत को अपने ऊपर सवार मत होने दो। यह तो तुम्हारे मस्तिष्क की गेंद है या इसे अपने पैरों की गेंद समझो।

केवल त्याग ही से अमरता मिल सकती है और इस क्रियाशील त्याग का अर्थ है कि सदैव अपनी आत्मा की संपूर्णता से संसार की इस गेंद के खोखलेपन को मानसिक दृष्टि के सम्मुख रखते हुए चिन्ता, भय, शोक, व्यग्रता और व्यथा को दूर फेंक दिया जाय। उधर कतई ध्यान ही न दिया जाय। तुम्हें किसी कर्तव्य का पालन आवश्यक नहीं,

तुम किसी के बंधन में नहीं, तुम किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं, तुम्हें किसी का ऋण नहीं चुकाना है। बस अपनी एक आत्मा का सारे समाज, सारे राष्ट्रों, प्रत्येक वस्तु के समक्ष जोर से प्रतिपादन करो। वही वेदान्त है। समाज, रीतियाँ, प्रथाये, कानून, नियम, कायदे, आज्ञायें, समालोचनाये कभी तुम्हारी शुद्ध आत्मा को छू भी नहीं सकतीं। जल-गणित विद्या (Hydrostatics) इस बात को सिद्ध करती है कि जल की एक छोटी सी धारा भी सम्पूर्ण समुद्र की बराबरी कर सकती है, उसका भार सम्हाल सकती है। हे व्यष्टिरूप अनन्त! तुम अपने पैरों पर खडे हने का साहस करो, तुम समस्त विश्व का भार उठा लोगे, ऐसा ही भान करो। भय को को दूर करो, चिन्ता छोडो। इस वध-जोग्य परिच्छिन्न रहंकार को मिटा दो। और इसी भाव से ओम् का उच्चारण करो।"

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

——:o:——

अरण्य-संवाद

सख्या [६]

विश्राम

जीवन की नाना भाँति की एक से एक विचित्र आवश्यकतायें, शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों पर विभिन्न दावों का भार संभवतः आपको हर समय हैरान और परेशान बनाये रहता है। यदि ये बाहरी परिस्थितियाँ आप को नित्य इसी प्रकार सताती रहें, उन्हें खुलकर खेलने की पूरी छुट्टी रहे तो समझ लो कि आप स्वयं अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहे हैं।

इनसे कैसे छुटकारा मिल सकता है ? राम ऐसी सफारिश नहीं करता कि आप कामों से पल्ला छुड़ा लें अथवा दैनिक कार-बार से मुँह मोड़ लें वरन् उसका कहना तो यह है कि आप ऐसी आदत डालें जिससे कठिन से कठिन और श्रमसाध्य कामों में भी आप नित्य विश्रान्ति का अनुभव करें। यह उपदेश वही वेदान्तिक संन्यास है। इससे तुम्हें सदैव त्याग की चट्टान पर खडा रहना होगा, और इस प्रकार अपने को इस उत्कृष्ट भूमिका पर दृढ़ता पूर्वक जमा कर जो भी काम सामने आये उसमें अपने को पूर्णतया तल्लीन कर देना होगा। कि फिर तुम कभी थकोगे भी नहीं और कठिन से कठिन कर्तव्य का पालन कर सकोगे।

इसकी और अधिक व्याख्या की जाय—काम करते समय बीच बीच में एक आध पल के खाली समय में इस बात का ध्यान करो कि केवल एक ही तत्व परमेश्वर है, वही मेरा अपना आप (सत्) है, और यह जो देह इत्यादि है, इससे मुझे कुछ भी सरोकार नहीं। मै मात्र साक्षी हूँ, मुझे कर्म के परिणाम, अर्थ और फल से कुछ भी प्रयोजन

नहीं। इस प्रकार विचार करते हुए अपनी आँखें बंद कर लो, अपने अंगों को ढीला छोड़ दो, शरीर को पूर्ण विश्राम में रहने दो, विचारों के भार को अपने ऊपर से उतार डालो, अपने कन्धों पर से चिन्ता का भार उतारने में आप जितना ही अधिक सफल होंगे, उतना ही अधिक आप अपने आप को बलवान् अनुभव करेंगे।

नस-नाड़ी शरीर में शक्ति स्थिर रखती हैं और विचार-शक्ति भी इसी नाडी संस्थान पर अवलम्बित है। पाचन-क्रिया, रक्त-संचालन, और बालों की उत्पत्ति और वृद्धि आदि सब क्रियायें अन्त में इसी नाड़ी-संस्थान पर आश्रित हैं। यदि आप का चिन्तन विक्षिप्त है और तरह तरह के विचारों से आप हैरान व परेशान रहते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि आपकी नसों पर अत्यन्त भार है। इस अनवरत विचार के परिश्रम के रूप में नसों का यह कार्य, एक ओर सम्भव है, लाभदायक हो, पर दूसरी ओर निश्चयपूर्वक हानिकारक है। चंचल और विक्षिप्त विचारों द्वारा देह के प्राण-रक्षक अंगों को हानि पहुँचती है। यदि आप चाहते कि आपकी जीवनशक्ति और आरोग्यता सदा स्थिर रहे, जीवन के भार को नाडी संस्थान रूपी अश्व अत्यन्त सुगमता से उठा सके, तो आपको अहंकार भरे ख्यालों को दिन प्रति दिन हलका करना चाहिए। चिन्तायुक्त और हैरानी पैदा करने वाले विचारों को जीवन रस चूसने से बचाओ। पूर्ण आरोग्यता और प्रबल क्रियाशक्ति का रहस्य इस बात में है कि आप अपने मन को नित्य हलका और प्रफुल्लित रखें; उसे कभी व्याकुल, बेचैन, चंचल और किसी भय अथवा शोक से परास्त न होने दें।

असली शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य यह है कि लोग न केवल ठीक ठीक काम करना सीखें, वरन् उसमें आनन्द भी लें, न केवल परिश्रमी और उद्योगी बनें, वरन् उद्योग से प्रेम करना भी सीखें।

परमावश्यक उपदेश

आकाश का गोलार्द्ध मेरा प्याला है, और उसमें चमकता हुआ प्रकाश मेरी सुरा।

यह मत समझो कि आपका कर्तव्य खान-पान की चीजे जुटाना है अथवा किसी का प्रेम प्राप्त करना, किसी को प्रसन्न करना, या कोई न कोई सांसारिक उद्देश्य प्राप्त करना है। इन सब उद्देश्यों और आदर्शों को परे फेंको; हानि-लाभ की परवाह मत करो और आस पास की परिस्थितियों से स्वतंत्र हो जाओ और अपने आप को नित्य शान्त और प्रसन्न रखना ही अपना उद्योग, धंधा, व्यापार, पेशा, वृत्ति, जीवन का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य बना लो। इस संसार में आपका परम पावन कर्तव्य, ध्येय, जो आप पर ईश्वर ने डाला हुआ है, अपने आप को प्रसन्न रखना है। आपका सामाजिक धर्म (कर्तव्य), आपके पड़ोसियों का माँग भी आपसे यही है कि आप अपने आप को शान्त और प्रसन्न रखो, घर के सम्बन्ध भी जो सब से बड़ा उत्तरदायित्व आप पर रखे हैं केवल इतना ही है, कि आप अपने आप में प्रसन्न रहें; और आपका अपने प्रति कर्तव्य भी, आपसे यही चाहता है कि आप सभी अवस्थाओं में अपने आप को प्रसन्न रक्खें। अपने आपके प्रति सच्चे रहो और इसके सिवा अन्य किसी वस्तु की परवाह न करो। अन्य सभी वस्तुयें आपके आगे सिर झुकायंगी। तथापि आपको इस बात से क्या प्रयोजन, वे झुकें, या न झुकें, आप तो अपने आप में ही प्रसन्न हैं। उदास और खिन्नचित्त होना ही धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, और पारिवारिक अपराध है, और केवल यही एक पाप है जो आप कर सकते हैं, केवल यही एक पाप है जो अन्य सब अपराधों, अधः पतनों और पापों की जड़ है। निर्मल गम्भीरता और राग-द्वेष रहित शान्ति में डूब जाओ, फिर आप देखेंगे कि आपके काम काज और अड़ोस-पड़ोस चारों ओर की परिस्थिति स्वतः आपके अनुकूल होने के लिए बाध्य हो जाती

है। किसी भी धन्धे के बारे में व्याकुल और व्यग्र होना, आप का कर्तव्य नहीं है। आपका एकमात्र काम, एकमात्र कतव्य है अपने आप को अपने ही में पूर्ण, संतुष्ट और प्रसन्न रखना, न कोई कर्तव्य और न कोई भार। आप अपने सिवा और किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं। आप यदि आनन्द और शान्ति के इस परम पवित्र नियम को तोडते हैं तो आप स्वयं अपने सामने घृणित अपराधी बन जाते हैं। दूसरे लोग भले ही प्रातःकाल उठते ही यह सोचते हों कि उनको बहुत से काम, बहुत से कर्तव्य हैं। जैसे कमरों को झाडना-बुहारना, दफ्तर जाना, मुँह-हाँथ या कपड़े धोना, खाना पकाना या पढ़ना-लिखना आदि-आदि; पर जब आप प्रातःकाल उठें तो सदा अपने आप को परम आनन्द-मय अनुभव करो, बस, आपका एक मात्र यही कर्तव्य है। इसका यह अर्थ नहीं कि आप और कामों को छोड़ बैठें अथवा घर गृहस्थी के कामों से परांमुख हो जाय। इन कामों को आप गौण, खेल जैसा समझ सकते हैं। और इन कार्यों को आप इस लिए करेंगे कि आप का आध्यात्मिक स्वास्थ्य कुछ न कुछ करता रहना चाहता है। परन्तु कोई भी काम करते समय आप यह सदा स्मरण रक्खें कि यह ठोस कहलाने वाला मुख्य काम वास्तव में नितान्त खोखला और गौण बहानामात्र है। वास्तव में आपका परम आवश्यक कर्तव्य है अपने आप को सन्तुष्ट रखना। विद्यार्थियो ! ध्यान से सुनो, यदि तुम परीक्षा के भावी परिमाणों पर अपने आनन्द को आश्रित करोगे तुम तब सन्देह के अन्धकार में, आशा-निराशा के झूले में झूलते रहोगे, तो तुम कभी भी कृतार्थ न हो सकोगे। हाँ, कृतार्थ होने के नित्य इच्छुक ही बने रहोगे। जैसे को तैसा मिलता है। इसी लिए अपने भीतर ब्रह्मानन्द का अनुभव करो और सफलता का आनन्द आप की ओर खिचा चला आयगा। यही दैवी-विधान है।

"Laugh and the world laughs with you,
Weep and you weep alone,
For this brave old earth must borrow its mirth,

It has sorrow enough of its own:
Sing and the hills will answer,
Sigh ! it is lost in the air:
The echoes do bound a joyful sound,
But shrink from voicing care.
Rejoice and men will seek you
Grieve and they turn and go;
They want full measure of all your pleasure,
But they do not want your woe.
Be glad and your friends are many,
Be sad and you lose them all.
There is none to decline your nectared wine,
But alone you must drink life's gall.
Feast, and your halls are crowded;
Fast, and the world goes by;
Succeed and give, and it helps you live,
But no one can help you die.
There is room in the halls of pleasure,
For a long and lordly train,
But one by one we must all file on,
Through the narrow aisles of pain.

Eella Wheller Wilcox

अर्थः—आप हँसो, तो संसार हँसेगा आपके साथ,
रोओ, तो आप अकेले रोओगे ;
क्योंकि इस धीर वीर पुरातन धरणी को अपना आनन्द
तो जुटाना ही होगा,
उसके पास अपना दुःख क्या कुछ कम है ?
आप गाओ; तो पहाड़ियाँ उत्तर देंगी,

पर शोक करो, तो वायु ही में लय हो जायगा ;
क्योंकि प्रतिध्वनियाँ आनन्दमयी ध्वनि का तो उत्तर देती हैं अवश्य,
पर चिन्ता के चीत्कार का उत्तर देने में उन्हें संकोच होता है।
आप आनन्द मनाओ, तो लोग आपको खोज करेंगे,
पर शोक करो, तो वे आप से मुँह मोडकर चल देंगे ;
वे आपके सर्व प्रकार के आनन्दों में पूरी पूरी मात्रा चाहते हैं,
हां, वे आपके शोक को नहीं बटा सकते।
आप खुश हों, तो आपके बहुत से मित्र हो जायंगे,
पर शोकाकुल हो, तो कोई पास न फटकेगा।
आपके अमृत समान पेय को पान करने से कोई इन्कार नहीं करेगा,
परन्तु जीवन का दुःख रूपी विष आप का अकेले ही पीना होगा।
आप भंडारा करो, तो आपके विशाल कमरे ठसाठस भर जायंगे,
उपवास करो, तो दुनिया अपनी राह लेगी ;
सफलता प्राप्त करो और दान दो, तो इससे आपको जीवन में सहायता मिलेगी,
परन्तु मरते समय कोई कदापि आपकी सहायता नहीं कर सकता।
आनन्द के प्रासाद में बहुत से प्रभुत्वशाली लोगों के लिये स्थान रहता है,
पर एक एक करके हम सबको
दुःख की तंग गलियों में होकर गुजरना होगा।

[इला हीलर विलकौक्स]

"Happiness is the only good,
The time to be happy is now.
The place to be happy is here.
The way to be happy is to make others so"

अर्थः—आनन्द ही एकमात्र अच्छाई है।
आनन्द होने का समय यही है।
आनन्द होने की जगह यही है।
आनन्द में रहने का ढंग है दूसरों को आनन्दित करना।

उपसंहार

राम दो मुख्य बातें आपके सामने रखता है। आप खूब विचार कीजिये—

(१) परिच्छिन्न-आत्मा (अहंकार) का त्याग।

(२) सच्ची आत्मा का हार्दिक समर्थन।

प्रथमः—वेदान्त के अनुसार परिच्छिन्नात्मा के त्याग, अस्वीकृति का अर्थ है पूर्ण निवृत्ति, पूर्ण विश्रान्ति, आराम और त्याग। ज्योंही कुछ समय मिले त्योंही अपने शरीर को कुर्सी या पलग पर इस भाँति डाल दो मानो उस का भार या बोझ आप पर कभी था ही नहीं, जैसे आप को उस से कोई सरोकार न हो, और वह आप से उतना ही अपरिचित हो जाय जैसे पत्थर का कोई टुकडा। बस, इस शरीर को थोडी देर मृतक की नाई पड़ा रहने दो, जैसे तुम्हारी चिन्तनशील इच्छा या विचार से उसका कोई सम्पर्क न हो। अपने मन को शरीर अथवा अन्य किसी भी वस्तु की चिन्ता से मुक्त कर दो। सारी इच्छाओं, आकांक्षाओं, आशाओं को त्याग दो, उन्हें अपने पास न फटकने दो। यही त्याग या विश्रान्ति है। तुम्हारी सम्पत्ति पृथ्वी पर पड़ी रहे, वह हृदय पर भार न हो।

द्वितीय—ब्रह्मत्व। ईश्वरेच्छा को अपनी ही इच्छा बनालो। परमात्मा के आशय को अपना ही आशय समझ उसका समर्थन करो,

चाहे वह सुख के निमित्त हो, या दुःख के निमित्त। अपने आप को शरीर और उसके अड़ोस-पड़ोस से ऊपर उठाओ, मन और उसकी इच्छाओं से तथा संसार और उसकी सम्मतियों के ऊपर स्थित रहो। अपने आपको सर्वव्यापक परमात्मा (परब्रह्म), सूर्यों का सूर्य, कार्य-कारण से ऊपर, नाम-रूप जगत से ऊपर, परमानन्द से एक, परम स्वतन्त्र 'राम' अनुभव करो। प्रणव (ॐ) का उच्चारण करो, जो भी स्वर अनायास तुम्हारे हृदय से निकल पड़े उसी प्राकृतिक स्वर में उसे गाने लगो। इस प्रकार सभी कष्ट और यातनायें तुम्हारे सामने से आप ही आप भाग जायंगी। संसार और आप की परिस्थितियां ठीक वैसी होती हैं जैसा आप उन्हें समझते हैं। कभी संसार को अपने हृदय पर बोझरूप न होने दो। दिन-रात इस तत्व का चिन्तन करो कि संसार के लोगों की सम्मतियाँ और सभा-समाजें आपका ही अपना विचार मात्र हैं, आप ही वास्तव में वह शक्ति हैं जिसके श्वास की छाया से यह जगत बना हुआ है। आप आरोग्यता (शारीरिक और मानसिक) की उच्च शिखर पर क्यों नहीं पहुँच पाते, क्योंकि आप अपने अत्यन्त समीपस्थ पड़ोसी, परमात्मा की अपेक्षा दूसरों की चंचल, धुंधली छाया का अधिक आदर करते हैं। दूसरों की रायों के लिए नहीं, वरन् स्वयं अपने ही बल पर जिओ। स्वतंत्र हो जाओ। एकमेवाद्वितीयं परमात्मा, असली पति, सब के स्वामी, सब के नाथ, एकमात्र हृदयस्थ ईश्वर को ही प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। आप किसी दशा में भी बहुसंख्यक मनुष्यों को, जनता के बहुमत को सन्तुष्ट नहीं कर सकते और आप इस पागल जन-समूह को सन्तुष्ट करने के लिए किसी प्रकार बाध्य भी तो नहीं। आप स्वयं अपने कर्त्ता-धर्त्ता हो। अपने आप को ही गा गाकर सुनाओ, मानो आप ही एक अकेले हैं और दूसरा सुनने वाला कोई है ही नहीं। जब आप का अपना आत्मा प्रसन्न है, तो जनता अवश्य सन्तुष्ट होगी। यही नियम दैवी विधान है।

जो कोई संकल्प-विकल्पों में वास करता है, वह धोखे और दुख-दर्द के राज्य में निवास करता है। फिर वह बुद्धिमान् और विद्वान् भले ही प्रतीत हो, पर उसकी बुद्धि और विद्या ऐसी ही खोखली होती है जैसे दीमक से खाया हुआ लकडी का तख्ता। इसलिए यद्यपि विचार आप के अंगरक्षक का कार्य करे, तथापि आपको उससे बँध जाने की ज़रूरत नहीं। यथासमय उसे उतार फेकना चाहिए, जैसे जब किसी को गरमी लगती है तो वह कोट उतार डालता है, अथवा जब चतुर कारीगर काम कर चुकता है, तो वह औज़ारों को परे रख देता है।

"जब आप काम में लगे हों, तो आपका ध्यान नितान्त उसी में एकाग्र होना चाहिए। दूसरे शब्दों में जो काम हाथ में हो उससे किसी भी अप्रयोजनीय वस्तु पर कदापि ध्यान बटाना ठीक नहीं, मानो भारी शक्ति-सम्पन्न और कम से कम शक्ति व्यय करनेवाला वाष्प इंजिन सीधा अपने पथ पर अग्रसर होता जाता है। जैसे उसके विभिन्न पुरजे एक ही साथ सामंजस्य पूर्वक कार्य करते हुए बिना किसी अनावश्यक रगड़ और अस्तव्यस्ता के अपने उद्देश में जुटे रहते हैं, उसी तरह आप भी अपने कार्य में जुटे रहें।

पर जब काम पूर्ण हो जाय और इंजिन को वर्तने का अवसर न रहे तो उसे पूर्णतया बन्द कर देना चाहिए। नितान्त रुक जाना चाहिए। फिर चिन्ता और व्यग्रता कैसी! चिन्ता की विचार-वृत्ति को उतार फेंको। इंजिन के 'शेड' में पहुँचते ही बच्चों के झुण्ड को उसके साथ मनचाहा खेल खेलने की जैसे छुट्टी दे दी जाय और स्वयं मनुष्य उस चैतन्य-मय कोश में निश्चिन्त विश्राम करे, जहाँ अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात् होता है।"

Om !

"O my sons! O too dutiful
Toward Gods not of me
Was not I enough beautiful ?

Was it hard to be free ?
For, behold, I am with you, am in you,
And if you look forth now and see,
I bid you but be;
I have need not of prayer:
I have need of you free,
As your mouths of mine air;
That my heart may be greater within me.
Beholding the fruits of me fair.
I that saw where ye trod
The dim paths of the night.
Set the shadow called God
In your skies to give light,
But the morning of manhood is risen
And the shadowless soul is in sight.
The tree many rooted
That swells to the sky,
With frontage red-fruited
The Life-tree am I,
In the buds of your lives is
The sap of my leaves Ye shall live and not die.
But the gods of your fashion
That take and that give,
In their pity and passion,
That scourge and forgive,
They are worms that are bred in the bark
That falls off ; they shall die and not live,

अर्थ—ऐ मेरे पुत्रो ! तुम तो देवताओं प्रति,
सच्चे बनते हो, न कि मेरे प्रति कर्तव्य-परायण !
क्या मैं काफी सुन्दर नहीं ?
क्या तुम्हारा स्वतन्त्र होना कठिन है ?
देखो तो मैं तुम्हारे साथ हूँ, तुममें हूँ,
यदि तुम अब विचारपूर्वक देखो, तो तुम्हें पता लगेगा—
मै तुम्हें अपने में स्थित होने की आज्ञा देता हूँ ।
मुझे प्रार्थना की आवश्यकता नहीं
किन्तु तुम्हारे स्वतंत्र करने की इच्छा है,
क्योंकि तुम्हारा सुख मेरी आकृति में बंधा है,
चाहता हूँ, अपने सौन्दर्य के परिणाम को देखकर
मेरा हृदय मेरे भीतर विशाल हो उठे ।
मैने जब तुम्हें रात्रि के धुँधले मार्गों में चलते देखा
तो मैंने ही ईश्वर रूपी छाया आकाश-मंडल में
तुम्हें प्रकाश देने के लिये डाल दी ।
परन्तु लो, मनुष्यत्व की प्रभात निकल आई
और छाया रहित आत्मा दृष्टिगोचर हुआ ।
बहु शाखा-सम्पन्न अश्वत्थ,
जो आकाश की ओर पके फलों सहित बढ़ रहा है,
वह जीवन-वृक्ष मैं ही हूँ ।
तुम्हारे जीवन की कलियों में,
मेरे पत्तों का रस है । उससे तुम जीवित रहोगे, मरोगे नहीं ।
परन्तु तुम्हारे कल्पित देवता जो लेते-देते हैं
और अपनी दया तथा क्रोध में क्षमा करते और दण्ड देते हैं,
वे उस छाल से पुष्टि पाये हुए कीड़े हैं,
जो गिर जाती है; ये कीड़े नष्ट हो जायँगे और जीवित न रहेंगे ।

गृहस्थाश्रम

ठीक ऐनक जैसा

ऐनक द्वारा हम प्रत्येक वस्तु देखते हैं, और वह हमारी आँखों पर भार रूप नहीं होता। दृष्टि में रुकावट डालने के स्थान में वह उसकी सहायता करता है। नेत्रों और बाहर के पदार्थों के बीच में परदा होने के बदले वह इन पदार्थों को साफ-साफ दिखलाता है। इसी प्रकार पति-पत्नी का पारस्परिक संबंध होना चाहिए कि वे एक दूसरे के बाधक न बनें, पति अपनी पत्नी में और पत्नी अपने पति में बन्द न हो जाय, वरन् वे एक दूसरे के द्वारा समस्त विश्व को देखें। यह तभी हो सकता है जब कि यह सम्बन्ध आध्यात्मिक और वेदान्तिक समझबूझ के आधार पर हो और किसी दूसरे दृष्टिकोण से यह संभव नहीं। जहाँ दोनों अपने व्यक्तित्व, व्यक्तिगत आदर-सम्मान, आस-पास की परिस्थितियों, रीति-रिवाजों, भावनाओं और स्वभावों से ऊपर उठते हैं, तभी दोनों को आत्मा के, अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन होते हैं, इससे पहले नहीं।

श्वास हमारे इतने अधिक निकट है, साक्षात् प्राणरूप है, किन्तु वह कभी हमारी चेतना में प्रकट नहीं होती। इसी प्रकार हमारा वैवाहिक जीवन भी पूर्ण सामंजस्यमय होना चाहिए। वह किसी प्रकार भार रूप न हो। पति-पत्नी एक दूसरे के हृदय को चिन्ताग्रस्त न करें। दोनों परम स्वतंत्र रहें। दम्पति में से कोई भी अपने साथी को पीछे घसीटनेवाला न बने। आजकल साधारणतः विवाहित पुरुषों में ही

की भावना पति की आध्यात्मिक उन्नति में बाधा बनकर खड़ी होती है। इसी प्रकार पति का विचार स्त्री के मार्ग में बाधक और भार के रूप में उपस्थित रहता है।

भारतवर्ष में स्त्री और पुरुष अपनी आँखों में सुरमा लगाते है। वह नेत्रों की दृष्टि को तेज करने के लिए लगाया जाता है। वह आँखों में जमा रहता है, किन्तु दृष्टि में रुकावट नहीं डालता। यदि वह कुछ कुछ बराबर लगता रहे, तो समझ लो, उसमें कोई दोष है। इसी प्रकार यदि पेट का अस्तित्व तुम्हें बराबर भान होता, रहे तो समझ लो, उसमें कुछ गड़बड़ है। यह साधारण नियम है।

एक दिन राम के पूर्व आश्रम की पत्नी ने राम से यह प्रश्न किया- क्या आपको मेरी याद आती है? राम ने उत्तर दिया—नहीं, राम कभी किसी दूसरे की याद नहीं करता। याद तो हमें उस व्यक्ति की आती है, जो हमसे भिन्न होता है। क्या तुम्हें कभी अपनी आँखों की, नाक की अथवा हाथ-पैरों की याद आती है। वे तो स्वयं तुम्हारा रूप हैं। इसी प्रकार जब कोई अपने साथी के साथ एक रूप हो जाता है, जो एक, ठीक वही, आत्म-स्वरूप होने के कारण वह उसे कैसे स्मरण कर सकता है? इस बात को जरा और स्पष्ट समझ लेना चाहिए।

जब हमें किसी मित्र का पत्र मिलता है, तब हम उस पत्र को चाहने लगते हैं, उसे बहुत महत्त्व देते हैं। मित्र का पत्र होने के कारण हम उसे प्रेम करने लगते हैं। इसी प्रकार पति और पत्नी मानो ईश्वर के पास से आये हुए एक प्रकार के पत्र हैं। पत्नी के लिए पति का शरीर ईश्वर का पत्र अथवा चित्र जैसा होना चाहिए; जिससे वह पति के शरीर से प्रेम तो करे, उसका आदर-सम्मान तो करे; परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी शरीर को केवल एक पत्र, एक चित्र, अथवा ऐसी ही कोई वस्तु मानती रहे जो स्वयं तत्त्व वस्तु नहीं है। इसी भाँति पत्नी पति के द्वारा ईश्वर को देखती

है। पति परमेश्वर की एक प्रतिमा, ईश्वर का एक चित्र बन जाय। यदि रात्रि में उनके शरीर परस्पर मिलते है, तो दिन के समय पत्नी को आध्यात्मिक मिलाप में रहना चाहिए। यदि रात्रि के शारीरिक मिलाप के साथ-साथ आध्यात्मिक मिलाप नहीं भान होता, तो पत्नी को दिन में यह कमी पूरी करनी होगी। प्रत्येक आलिंगन के साथ पत्नी को यह विचार करना चाहिए कि "मैं ईश्वर-समागम प्राप्त कर रही हूँ। ऐ ज्योति स्वरूप! तू मेरे पास आ। मैं तेरा आलिंगन करती हूँ। मै प्रकाश का आलिंगन करती हूँ, यही भाव सच्चा आनन्द है, यही समस्त विश्व के साथ तदात्म होने अथवा पूर्ण पवित्रता प्राप्त करानेवाला है। हे देव! हे ज्ञानस्वरूप! तू मेरे पास आ। मै तुझे स्वीकार करती हूँ।" इस भाँति प्रत्येक वस्तु ईश्वर का चिह्न समझी जानी चाहिए। यदि रात्रि में इसका अनुभव नहीं हुआ, तो दिन के समय इसकी पूर्ति करनी चाहिए। इस भाँति आप उस एकता और उस वैवाहिक एकता का भान कर सकते हैं। ईश्वर को, केवल ईश्वर को आलिंगन कीजिये। समस्त विश्व को अपना ही शरीर मानिये। समस्तरूप, सर्वरूप, सब कुछ बन जाइये। यही भाव आपको सदैव मन में जमाना चाहिए। जहाँ एक ओर वेदान्त आपसे शारीरिक मिलाप के समस्त भाव को त्याग देने की प्रार्थना करता है, और कहता है कि एक शरीर दूसरे पर भार रूप न हो, वहाँ दूसरी ओर आपसे, वास्तविक आत्मा से सदैव एक रहने की भी प्रार्थना करता है। हर क्षण आप इस विचार पर मनन करते रहें कि "ईश्वर, शक्ति, ऐक्य, पूर्ण प्रेम, दिव्य प्रेम, पूर्ण सत्य, और विश्वव्यापी एकता सब कुछ मुझ में है। मै वही हूँ, वही मै हूँ। वह और मैं एक हैं।" तब उस स्थिति में आप को अपनी वास्तविक आत्मा जिससे आपने विवाह किया है और जो आपका निजी अपना आप है, सब में, पौधों में, वृक्षों में, नदियों में, प्रत्येक वस्तु में अपना आप अनुभव होने लगेगा।

ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!!

अरण्य-संवाद

संख्या (८)

निन्नानवे का फेर

लोग कहा करते हैं कि निन्नानवे के फेर में मत पड़ो— इसका क्या अर्थ है ?

कोई एक मनुष्य अपनी पत्नी के साथ अपनी छोटी सी झोंपड़ी में आनन्दपूर्वक रहता था। वे दोनों बहुत सुखी थे। वह दिन भर मेहनत करता और जो कुछ थोड़ी सी मज़दूरी पाता, उससे किसी प्रकार अपना निर्वाह करता। उसे न कोई दुनिया की लालसा थी, न इच्छा। डाह और घृणा को वह जानता भी न था। एक सच्चा और सीधा सादा मजदूर था। उसके पड़ोस में एक बहुत ही धनाढ्य मनुष्य रहता था। यह धनाढ्य सदैव चिंतामग्न रहता, प्रसन्नता, आनन्द कैसा होता है— उसे इसका पता भी न था। एक बार एक वेदान्ती साधू उधर से निकला। उस धनाढ्य और उसके गरीब पड़ोसी को देखकर उसने धनी को बताया कि "तुम्हारी सारी चिन्ताओं और परेशानियों का कारण तुम्हारी सम्पत्ति है। तुम्हारी सम्पत्ति ने तुम पर अधिकार जमा लिया है, वह तुम्हें दबाये हुए है। तुम्हारा मन सदैव एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर दौड़ा करता है। साधु ने गरीब पड़ोसी की ओर उंगली उठाकर कहा, "उसकी ओर देखो, उसके पास कुछ नहीं है, किंतु उसका मुख आनन्द से खिला हुआ है, उसके पट्ठे कैसे दृढ़ और उसकी भुजायें कैसी सुडौल हैं। वह कैसी प्रसन्नता, कैसी खुशी और कैसे आनन्द से इधर-उधर विचरता और मस्ती के गीत गाता है। तुमको भला ऐसा सुख कहाँ नसीब। उसने अपना जीवन जिस साँचे में ढाला है, वह दूसरों का

दिल खींचे बिना नहीं रह सकता।" तब धनी ने साधु के वचनों की परीक्षा लेनी चाही। साधु की सम्मति के अनुसार धनी ने चुपके से उस गरीब के घर में निन्नानवे रुपये फेंक दिये। लो, दूसरे ही दिन उन्होंने देखा कि उस गरीब के घर में चूल्हा नहीं जला। गरीब के घर में पहले रोज चूल्हा जला करता था। वे अपनी गाढ़ी कमाई के पैसे से कुछ न कुछ मोल लेकर रोज भोजन पकाया करते थे, उस रात उन्होंने न घर में आग जलाई और न कुछ खाना बनाया, वे भूखे ही रह गये। दूसरे दिन प्रातः काल साधु उस धनी को लेकर उस गरीब मजदूर के यहाँ गया और घर में चूल्हा न जलने का कारण पूछा। गरीब आदमी साधु के सामने कोई बहाना न कर सका! उसे सच-सच हाल बताना पड़ा। उसने कहा कि कल से पहले मैं कुछ आने कमाया करता था, और उन आनों से आटा और तरकारी खरीद कर पकवाता था। किंतु कल जो हमने आग नहीं जलाई तो बात यह हुई कि हमारे यहाँ एक छोटी सी पोटली गिरी जिसमें पूरे ९९ रुपये थे। जब हमने निन्नानवे रुपये गिने, तो हमारे मन में यह विचार आया कि केवल एक रुपये की कमी है, एक और हो तो पूरे सौ हो जायँ। बस, उसी एक रुपये को पूरा करने के लिए हम लोगों ने यह तय किया कि हम एक एक दिन के बाद खाना खायेंगे और इस प्रकार प्रायः एक सप्ताह में थोड़े थोड़े आने बचाकर उस कमी को पूरा कर लेंगे। हमारे पास पूरे सौ रुपये हो जायँगे। इसीलिए कल हमें भूखा रहना पड़ा। धनवान मनुष्यों की मनहूसियत का रहस्य बस इतना ही है। जितना अधिक उन्हें मिलता है, उतने ही अधिक वे दरिद्री होते जाते हैं। जब निन्नानवे पा जाते हैं तो अधिक की चाह बढ़ती है, जब निन्नानवे हजार मिल जाते हैं, तो वे एक लाख चाहने लगते हैं।

मुझे अपनी कुल्हाड़ी तेज करनी है

एक अमरीकन सज्जन बैञ्जेमिन फ्रैंकलिन ने अपनी आत्मकथा में अपनी बाल्यावस्था का एक अनुभव वर्णन किया है। बचपन में वह फ़िलाडेल्फ़िया के स्कूल में पढ़ने जाया करता था। एक दिन रास्ते में उसने एक लुहार को काम करते देखा। उन दिनों कलों का इतना अधिक प्रचार न था जितना कि आजकल है। लुहार अपनी दुकान में काम कर रहा था। एक उत्सुक बालक की नाईं बेञ्जेमिन दूकान के पास रुक गया और उसे कार्य करते देखता रहा। बच्चों का स्वभाव होता है कि जो चीज़ उनके सामने आ जाती है उसमें वे लीन हो जाते हैं। उसके हाथ में बस्ता था और वह स्कूल के रास्ते में खड़ा था, किन्तु लुहार को काम करते देखकर उसे ऐसा आनन्द आया कि वह स्कूल जाना ही भूल गया। लुहार ने लडके की दिलचस्पी समझ ली। वह अपने औज़ारों और चाकुओं को तेज़ कर रहा था। लुहार का सहकारी किसी काम से गया हुआ था। दूकान में और कोई था नहीं। इस छोटे से बालक की इस काम में इतनी अधिक दिलचस्पी देख लुहार ने बालक को अपने पास बुलाया। बैञ्जेमिन आगे बढ़ा तो लुहार ने कहा—"तुम बड़े अच्छे लड़के हो, बहुत ही बढ़िया। सचमुच तुम बड़े समझदार हो।" बैञ्जेमिन फूल उठा, उसे चापलूसी अच्छी लगी। लुहार ने जो बैञ्जेमिन के चेहरे पर मुस्कान खिलती देखी, तो बोला—क्या तुम चाक घुमाने में कुछ सहायता करोगे? बैञ्जेमिन ने तुरन्त घुमाना प्रारम्भ कर दिया। बच्चे स्वभावतः फुर्तीले होते हैं और वे कुछ न कुछ ऐसा करना चाहते हैं जिससे उनके पट्ठों पर कुछ जोर पड़े। यदि आप उनके मन को बहला सको, तो आप उन्हें दुनिया के दूसरे सिरे पर भी अपने काम के लिए भेज सकते हो। जब तक बैञ्जेमिन उस चाक को घुमाता रहा, तब तक लुहार बराबर उसकी प्रशंसा के पुल बाँधता रहा। उसने उसकी बड़ी खुशामद की। बालक काम करता गया।

इतने ही में लुहार ने ढेर के ढेर चाकू और कुल्हाड़ी तेज कर डाले। जब छोटा बच्चा थक गया तो उसे स्कूल याद आया। उसने सोचा—अब कविता-पाठ का घंटा होगा। और वह दुकान छोड़कर जाने लगा। परन्तु वह लुहार तो बच्चे को प्रशंसा और चापलूसी के बल पर वश में किये हुए था। उसने कहा—"ऐ भोलेभाले लड़के, तुम्हें मालूम है कि तुम स्कूल में कभी पीटे नहीं जाते, तुम बड़े अच्छे और तेज हो। जो काम दूसरे लडके तीन तीन घण्टे में करते हैं, तुम उसे एक घण्टे में ही कर डालते हो। स्कूल-मास्टर तुमसे कभी रुष्ट नहीं होता, तुम सचमुच बड़े अच्छे हो।" इस प्रकार एक-एक करके उसकी सब तलवारें रित गईं। हर एक नई तलवार के समय उसने जाने की कोशिश की, किन्तु जा न सका। कविता-पाठ दस बजे आरम्भ होता था, और उसे बारह बजे छुटकारा मिला। वह स्कूल पहुँचा, तो देर में पहुँचने के कारण बेतों से पीटा गया। थका तो था ही, अब उसकी भुजायें सूज गईं। फलस्वरूप बेचारा एक सप्ताह तक कष्ट भोगता रहा। इधर अपने पाठ भी तैयार न कर सका। बस, इसके बाद बड़े होने पर सदैव जब कहीं कोई उसकी खुशामद करता, तो उसे ख्याल आ जाता कि उसे अपनी कुल्हाड़ी तेज़ करनी है। इसके बाद कभी बैन्जेमिन फ्रैंकलिन खुशामद के जाल में नहीं फँसा।

अरण्य-संवाद

संख्या (६)

एक साधु के पास कुछ पैसे थे। वह उन्हें बालकों में बाँटना चाहता था। बहुत से ग़रीब उसके पास पैसा लेने आये, किन्तु उसने उन्हें दिया नहीं। अन्त में साधु के सामने हाथी पर विराजमान एक राजा उधर से आ निकला। साधु ने हाथी के हौदे में सारे पैसे फेक दिये, ठीक राजा के सामने। साधु के इस विचित्र कार्य्य से राजा स्तंभित हुआ। साधु ने कहा कि वे पैसे सबसे अधिक निर्धन व्यक्ति के लिए थे। राजा ने पूछा—मैं कैसे सबसे अधिक निर्धन व्यक्ति हूँ? साधु ने उत्तर दिया—तुम अत्यन्त निर्धन इसलिए हो कि तुम्हारे पास इतनी अधिक सम्पत्ति है, और फिर भी तुम अन्य राज्यों के लिए सदैव तडपते रहते हो। तुमसे अधिक निर्धन और कौन हो सकता है?

× × × ×

एक मनुष्य ढेर के ढेर रुपये सन्दूक में जमा कर रहा था। एक साधु उधर से निकला। उस धनी ने जो अपने धन को बडे-बडे सन्दूकों और लोहे की तिजोरियों में बन्द कर रहा था, साधु को बुलाया। साधु ने इस प्रकार धन जमा करने का कारण पूछा। धनी ने उत्तर दिया, "महाराज! आपको धन की क्या चिन्ता, जनता आपको भोजन दे देती है, और यदि लोग न भी दें, तो आप अपने शरीर को तृणवत् समझते है, किन्तु हमारे लिए तो धन ही परमावश्यक है। हम लोग धन जमा करते हैं कि समय पडने पर काम आवे।" साधु चुप हो गया। दूसरे दिन धनी साधु की टूटी फूटी कुटी पर उसके दर्शन करने गया। जब धनी साधु की कुटी के पास पहुँचा, तो देखता है कि साधु ने बडे परिश्रम से एक लम्बा चौड़ा गड्ढा खोद रखा है और उसमें वह गोल

गोल सुन्दर पत्थर भर रहा है। उस दिन साधु दिन भर इसी भाँति श्रम करता रहा था। जब धनी साधु के पास पहुँचा, तो उसने पूछा, "स्वामी जी! स्वामी जी! आप यह क्या तमाशा कर रहे है?" साधु ने उत्तर दिया, "मै पाषाण के इन सुन्दर टुकड़ों को जमा कर रहा हूँ, देखो तो ये कैसे गोल गोल हैं?" धनी मुस्कराया और बोला—"आप इन्हें क्यों इकट्ठा कर रहे हैं? यहाँ तो सारे का सारा पहाड़ इनसे भरा हुआ है, इन्हें इकट्ठा करने से क्या लाभ?" साधु ने कहा, "मैंने इन्हें समय पर काम आने के लिए सुरक्षित किया है। किसी समय मुझे इनकी आवश्यकता पड़ सकती है, और सम्भव है कि उस समय यह पर्वत ही पृथ्वी की तह से धुल कर साफ हो जाय। अतएव मै इन्हें इकट्ठा कर लेना चाहता हूं।" धनी ने उत्तर दिया, "यह कैसे सम्भव है? पहाड़ पृथ्वी पर से कैसे बह सकता है?" तुरन्त साधु ने तड़पकर उत्तर दिया—"ऐ मूर्ख! यह पाठ तो तूने ही मुझे पढ़ाया है। ऐसा समय कभी नहीं, कदापि नहीं आ सकता, जब ईश्वर तेरे भोजन का प्रबन्ध न कर दे। फिर सोना-चाँदी इकट्ठा करने में अपनी शक्तियों का अपव्यय करने और अपने अमूल्य समय को नष्ट करने से क्या लाभ? मुझ से एक शिक्षा लो। जीवन इस प्रकार खोने के लिए नहीं है, यह तो समय का घोर अपव्यय है। जीवन इन तुच्छ और क्षुद्र चिन्ताओं और लालसाओं में नष्ट करने के लिए नही है।"



अरण्य-संवाद

संख्या (१०)

किसी समय एक सुशिक्षित काजी मुसलमानी राज्य में एक बादशाह के पास गया। बादशाह काजी के धार्मिक ज्ञान के दावे के कारण उस का बडा सम्मान करता था। फिर भी उसने काजी की योग्यता की परीक्षा लेनी चाही। राजा स्वयं विद्वान् न था, किन्तु एक दूसरे व्यक्ति ने, जो स्वयं काजी बनना चाहता था, राजा को कुछ मजेदार प्रश्न सुझा दिये थे। इसलिए काजी के पहुँचते ही बादशाह ने उससे पूछा—आप मुझे यह बताइये—"ईश्वर का मुख किस ओर है, ईश्वर कहाँ बैठता है, वह क्या खाता है और क्या काम करता है?" बादशाह ने काजी से कहा कि यदि आप इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर दे देंगे, तो आपकी पदवृद्धि की जायगी।" काजी ने सोचा कि बादशाह ने जो प्रश्न पूछे है, वे अवश्य ही अति कठिन होंगे। वह तो केवल प्रशंसा करके बादशाह को प्रसन्न करना चाहता था। वह उसकी चापलूसी करना जानता था। बादशाह की बात सुनकर उसने इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आठ दिन का अवकाश माँगा।

आठ दिन तक काजी बराबर सोचता रहा, किन्तु किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच सका। वह सोचता, बादशाह को सन्तोषजनक उत्तर कैसे दिया जाय? अन्त में आठवाँ दिन आ पहुँचा, किन्तु काज़ी को उन प्रश्नों के कोई उत्तर न सूझे। तब और अवकाश पाने के निमित्त उसने रोग-ग्रस्त होने का बहाना किया। इस पर काज़ी के नौकर (पाजी) ने अपने मालिक से यह जानना चाहा कि आखिर मामला क्या है? काज़ी ने कहा—"भाग यहाँ से, मुझे तंग मत कर, मैं मरनेवाला हूँ।" नौकर ने कहा—"कृपा कर मुझे बता तो दीजिये कि मामला क्या है।

आपके बदले मैं खुशी से मर सकता हूँ, मैं आपको किसी प्रकार दुखी नहीं देख सकता।" तब काज़ी ने सारी कठिनाई उसे समझा दी। नौकर बहुत छोटे दर्जे का आदमी था, उसकी कोई इज्जत न थी जैसे गारा-ईंट ढोने-वालों की कोई बात नहीं पूछता। परन्तु पाजी था तो काजी का शिष्य और पूरा-पूरा समझदार। वह इन प्रश्नों के उत्तर जानता था। उसने कहा—मैं चला जाऊँगा, उत्तर दे आऊँगा, पर आप मुझे एक आज्ञा-पत्र लिख दीजियेगा। यदि मेरे उत्तर बादशाह को सन्तोष-प्रद न हुए, तो मैं मरूँगा, न कि मेरा मालिक। काज़ी इसी संकोच में पड़ा हुआ था, किन्तु उसी वक्त बादशाह का दूत काज़ी के पास पहुँचा, तो काजी काँपने लगा। और उसने नौकर को जाने की आज्ञा दे दी। पाजी ने अपने सर्वोत्तम वस्त्र, जो चिथड़े-चिथड़े थे, पहन लिये। वह एक वेदान्ती भाई था। भारतवर्ष में सदा से राजा लोग सच्चे साधुओं के पास आते रहते है और उनसे विद्या व ज्ञान प्राप्त करते है। पाजी (यह ज्ञानी नौकर) निर्भय होकर बादशाह के पास पहुँचा और बोला—"महाराज, आप क्या पूछना चाहते हैं, आपको क्या पूछने की इच्छा है?" बादशाह ने कहा—"क्या तुम उन प्रश्नों के उत्तर दे सकते हो जो मैंने तुम्हारे मालिक से पूछे थे?" पाजी ने कहा—"मै उन प्रश्नों का उत्तर तो दूँगा, किन्तु आपको जानना चाहिए कि जो उत्तर देता है वह गुरु के समान होता है, और जो प्रश्न करता है वह शिष्य। एक सच्चे मुसलमान होने के नाते मै आपसे आशा करता हूँ कि आप अपने पवित्र धर्म-ग्रन्थों (कुरान इत्यादि) के नियमों के अनुसार कार्य करेंगे। नियमानुसार, मुझे सम्मान के स्थान पर बैठाइये और आप मुझसे कुछ नीचे आसन पर बैठिये।" अतः बादशाह ने उसे कुछ सुन्दर वस्त्र पहनने को दिये और अपने तख्त पर बैठा दिया, तथा बादशाह स्वयं कुछ नीचे बैठा। फिर बादशाह ने कहा—"देखो, एक बात का ध्यान रखना, यदि आपके उत्तर मुझे संतोषप्रद न हुए, तो मै

आपको मार डालूँगा।" पाजी ने कहा—"निस्सन्देह, यह तो पहले ही से निश्चित है।"

अब पहला प्रश्न जो बादशाह ने पूछा, यह था—"ईश्वर बैठता कहाँ है?" पाजी ने अक्षरशः उत्तर देना ठीक न समझा। वह बादशाह की समझ में न आता। अतएव पाजी ने कहा—"एक गाय बुलाओ।" गाय लायी गई। तब उसने पूछा—"क्या गाय में दूध है?" बादशाह ने कहा—"हाँ, निस्सन्देह गाय में दूध है?" "दूध कहाँ रहता है?" बादशाह ने कहा—"थन में।" पाजी ने कहा—"यह ठीक नहीं, दूध तो गाय के सारे बदन में फैला रहता है। अच्छा, इस गाय को बाहर कीजिये और कुछ दूध मँगाइये"। दूध लाया गया। पाजी ने फिर पूछा—"इसमें मक्खन कहाँ है? क्या मक्खन दूध में उपस्थित है"? बादशाह ने कहा, "हाँ, अवश्य है"। पाजी ने प्रश्न किया, "कहाँ है? दूध में मक्खन किधर बैठा है"? बादशाह कुछ न बता सके। तब पाजी ने कहा—"यद्यपि आप यह नहीं बता सकते कि मक्खन कहाँ रहता है, फिर भी यह विश्वास सबको रहता है कि मक्खन है अवश्य; वास्तव में मक्खन दूध में सर्वत्र व्यापक है। इसी प्रकार ईश्वर भी समस्त विश्व में व्यापक है। ठीक उस प्रकार जैसे दूध में मक्खन हर जगह है, और दूध गाय में प्रत्येक स्थान पर है। दूध के लिए तुम गैया दुहते हो, इसी प्रकार ईश्वर को पाने के लिए अपने हृदय को दुहना चाहिए"। फिर पाजी ने पूछा, "बादशाह सलामत! क्या आपको प्रश्न का उत्तर मिल गया"? बादशाह ने कहा, "हाँ, ठीक है"। अब वे लोग, जो बादशाह से कहा करते थे कि ईश्वर सातवें या आठवें आकाश में रहता है, बादशाह की निगाहों में गिर गये। वे उसकी दृष्टि में नगण्य हो गये, क्योंकि उनकी बात ठीक न थी।

इसके बाद दूसरा प्रश्न आया—"ईश्वर किस ओर देखता है, उत्तर, दक्खिन, पूर्व या पश्चिम?" यह भी बड़ा विचित्र प्रश्न था,

क्योंकि ये लोग ईश्वर को एक व्यक्ति की नाईं देखते थे। पाजी ने कहा, "बहुत अच्छा, एक दीपक लाइये।" एक मोमवत्ती लायी और जलायी गई। इस प्रयोग के द्वारा उसने दिखा दिया कि मोमबत्ती उत्तर, दक्खिन, पूर्व, पश्चिम की ओर नहीं, किन्तु सब ओर एक समान देखती है। बादशाह को सन्तोष हो गया। इसी प्रकार ईश्वर तुम्हारे हृदय में एक ज्योति के समान विद्यमान है, जो चारों ओर प्रकाशवान् है।

तीसरा प्रश्न आया, "ईश्वर करता क्या है?" पाजी ने कहा—"बहुत अच्छा" और बादशाह से कहा कि काज़ी को बुलवाइये। जब उसका मालिक काज़ी आया, तो नौकर को बादशाह के तख्त पर बैठा देख बड़ा चकित हुआ। पाजी ने काज़ी से उस जगह बैठने को कहा, जहाँ पाजी (उसका नौकर) पहले बैठता था, और बादशाह को काज़ी की जगह पर बैठाया, और आप तो बादशाह के तख्त पर बैठा ही था। उसने कहा—देखो, ईश्वर का यही काम है, वह हरएक को, हर वस्तु को चलाता रहता है। उसने पाजी को बादशाह, बादशाह को काजी, और काज़ी को पाजी बनाया।" यही क्रम संसार में सदैव चलता रहता है। एक कुटुम्ब उन्नति पाता है, और फिर अज्ञात हो जाता है,। दूसरा उसकी जगह लेता है और कुछ काल बाद वह भी लोप। आज एक मनुष्य सम्मान पाता है, कल दूसरा उसका स्थान ग्रहण करता है, इसी प्रकार दिन प्रति दिन, वर्ष प्रति वर्ष परिवर्तन होता रहता है। बस, इस परिवर्तन का ही नाम संसार है, यहाँ अनादि काल से परिवर्तन हो रहा है। उस दिन से पाजी काज़ी बना दिया गया।

अरण्य-संवाद

सख्या (११)

निम्नाङ्कित आख्यायिका 'कैन्टरबरी टेल्स' के यात्रियों मे से एक कोमल स्वभाव लम्बे कदवाले नवयुवक क्लर्क द्वारा कही गई थी। उसे अपनी बारी से श्रोताओं को प्रसन्न करना था।

किसी देश में एक बहुत ही कुलीन, विद्वान् और प्रतापवान् राजकुमार रहता था, जो थोडे दिनों बाद सिंहासन पर बैठा। वर्ष पर वर्ष व्यतीत होते गये, किन्तु उसने विवाह न किया। लोगों को बडी चिन्ता थी कि वह विवाह क्यों नहीं करता। वे राज-सिंहासन के लिए उत्तराधिकारी चाहते थे। उन्होंने अत्यन्त हठपूर्वक राजकुमार से पत्नी चुनने के लिए आग्रह किया और अन्त में राजकुमार ने यह शर्त रखी कि यदि आप लोग मुझे अपना मनमाना चुनाव करने देंगे तो मै शादी करूँगा। आप जानते होंगे कि उस देश में प्रेम तथा विवाह में भी किसी को कोई स्वतन्त्रता न थी। वे प्रथाओं और रीति रिवाजों में बँधे हुए थे। राजा अपनी इच्छाओं के अनुसार विवाह करना चाहता था। उसकी प्रजा ने यह सोचकर कि यदि उसकी बात स्वीकार न करेंगे, तो वह आयु भर क्वारा रहेगा, उसे अपने इच्छानुकूल चुनाव करने की अनुमति देना उचित समझा। उसने अपने सभासदों और कर्मचारियों को एक बडे भारी वैवाहिक उत्सव की तैयारियाँ करने की आज्ञा दी। प्रत्येक बात बड़े राजसी ठाठ और गौरवपूर्ण ढग में तैयार करायी गई। नियत दिवस पर एक सेना बडे समारोह के साथ सजायी गई। प्रत्येक मनुष्य अपने सर्वोत्तम वस्त्रों में सुसज्जित था और सवारियों पर सवार था। राजकुमार उनके बीचों बीच में सवार होकर चल रहा था—आधी सैन्य आगे और आधी पीछे। वे राजा के

आज्ञानुसार किसी मार्ग विशेष का अवलम्बन न करके सीधे चलते गये। धीरे-धीरे वे बड़े सघन बनों के बीच में पहुँचे। वे आपस में कहते थे, "यह राजा क्या करने वाला है, क्या यह झील, सरोवर अथवा पाषाणों के साथ विवाह करेगा?" वे बड़े चकित थे। वे चलते गये, चलते गये और अन्त में उन वनों के बीच एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक छोटी सी झोपड़ी थी, और उस झोपड़ी के पास एक सुन्दर, स्वच्छ, निर्मल सरोवर के चारों ओर सुन्दर, मनोहर और प्राकृतिक वाटिकाएं थीं। उन वृक्षों में से एक वृक्ष की डाली से एक पालना लटक रहा था, जिस पर एक वृद्ध लेटा हुआ था। उन्होंने मन में सोचा—"क्या राजा उस वृद्ध से विवाह करने जा रहा है? सेना का अर्द्ध भाग आगे निकल चुका था। जब राजा का हाथी उस स्थान पर पहुँचा तो उसने आज्ञा दी, "ठहरो"। ठीक उसी क्षण वहाँ उसी भूमिका में एक सुन्दर, मनोहर और प्यार करने योग्य कन्या दिखाई दी, जो उस पालने को, जिस पर उसका पिता लेटा हुआ था, धीरे धीरे झुला रही थी।

राजा सिंहासनासीन होने के पूर्व उस वन में कई बार आ-जा चुका था। उसने लड़की को ध्यानपूर्वक देखा था और सदैव उसे अत्यन्त कर्तव्यपरायण पाया था। वह अत्यन्त श्रद्धा से अपने पिता की सेवा-सुश्रूषा करती थी, उसके लिए पानी लाती, नहलाती और खिलाती-पिलाती थी। झाड़ने, बुहारने, बर्तन आदि माँजने का सभी काम वह करती थी। परन्तु ये सारे काम करते हुए वह सदैव प्रसन्नचित्त, प्रकाशमान, आनन्दित, हँसमुख रहती और बीच-बीच में ऐसी सुरीली तान से गाने लगती, जैसे कोयल कूकती हो। बालिका के इस आह्लादमय स्वभाव ने राजा पर ऐसा प्रभाव डाला था कि उसने मन में प्रण कर लिया था कि यदि वह कभी विवाह करेगा, तो उसी लड़की के साथ। लड़की उत्फुल्ल नेत्रों से इस विशाल सेना की ओर देख रही थी, उसे तनिक भी कभी यह ध्यान नहीं आया

था कि वह मनुष्य जो कई बार अश्वारोही बनकर उनके द्वार से निकला था, राजा है। उसने अपने पिता से पूछा कि इस महान् नाटक का तात्पर्य क्या है? उसके पिता ने कहा कि कोई दुल्हा दूर देश की किसी राजकुमारी को अपनी पत्नी बनाने जा रहा है। इधर राजा हाथी पर से उतर पड़ा था। वह सीधा वृद्ध के पास गया और पूर्वीय प्रथानुसार उसके पैरों पर गिर पड़ा। वृद्ध ने उससे कहा—"ऐ पुत्र, क्या चाहते हो?" राजा का मुखमण्डल चमक उठा! उसने कहा—"मैं आपका जामाता बनना चाहता हूँ।" वृद्ध का हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ा। उसके आनन्द का ठिकाना न था। उसने कहा—"राजन्, आप भूल रहे हैं, आपको भ्रम हो गया है; आप एक दरिद्र साधु की कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा कैसे कर सकते हैं? हम तो बहुत ही दीन, बहुत ही निर्धन हैं!" राजा ने कहा कि मेरा जितना प्रेम इस कन्या (तुम्हारी पुत्री) के साथ है, उतना किसी और के साथ नहीं। पिता ने कहा—यदि यह बात है तो वह आपकी है। यह पिता एक वेदान्ती साधु था, उसने अपना ज्ञान अपनी पुत्री को सिखाया था। फिर उसने राजा से कहा कि मेरे पास पुत्री को देने के लिए कोई दहेज नहीं है। एकमात्र वस्तु जो मैं दहेज में दे सकता हूँ, वह है मेरा आशीर्वाद। तब राजा ने अपनी दुल्हन के सामने भाँति-भाँति के सुन्दर वस्त्र रख दिये, और उससे पहनने को कहा। लड़की ने वैसा ही किया। परन्तु बालिका राजा के साथ खाली हाथ नहीं गई थी। उसके पास एक यौतुक था। सोचिये, क्या होगा? जिन टोकरियों को राजा ने उसके पास रत्न, जवाहर आदि रखने को भेजा था, उनमें से एक में उसने अपने फटे-पुराने गुदड़े रख लिये थे, जिनको वह पिता के साथ रहते समय पहनती थी। अब वृद्ध पिता अकेला रह गया था, अतः एक नौकर उनकी सेवा में नियत कर दिया गया। इसके सिवा उसने राजा से और कुछ भी नहीं चाहा।

राजा अपनी दुल्हन को महल में ले गया। पहले तो उसके सभासद् इस दुल्हन को पसन्द न करते थे, क्योंकि वह गरीब घराने की थी। ये कुलीन और धनाढ्य सरदार ऐसा चाहते हैं कि राजा उनकी पुत्रियों-भतीजियों से विवाह करे, और यहाँ उन सबको एक गरीब घराने की लड़की के आगे नीचा देखना पड़ा। उन्हें उस लड़की से बड़ी ईर्ष्या हो गई। वे इस गरीब घराने की लड़की के सामने कैसे झुक सकते थे? बड़ी कठिन समस्या थी, किन्तु नई रानी ने अपने मृदु स्वभाव, विनम्र व्यवहार और प्रेममय आचरण से उन सबको मुग्ध कर लिया। धीरे-धीरे वे सब उसे बहुत प्यार करने लगे। रानी सदैव चुपचाप और शान्त रहती थी, किसी सम्बन्ध में कभी बेचैन, हैरान या परेशान न होती थी; चाहे कैसा ही संयोग क्यों न हो। वह कभी चिन्ता-मग्न नहीं देखी गई। प्रायः एक वर्ष पश्चात् रानी के एक पुत्री उत्पन्न हुई। शिशु-कन्या सुन्दरी थी। उसे देखकर राजा और रानी कैसे प्र[illegible] हुए! शिशु-कन्या की अवस्था तीन-चार वर्ष की थी, राजा रानी के [illegible] आया और कहने लगा कि राज्य में एक विद्रोह, एक विप्लव होने वाल[illegible], यदि ऐसा हुआ, तो बड़ा बुरा होगा। रानी ने इन बातों का कारण [illegible]। पति (राजा) ने उत्तर दिया कि राज्य के उच्च पदाधिकारी [illegible] मन्त्री-गण मुझसे तभी से ईर्ष्या करते हैं जब से मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया है, और अब वे इस बात को सहन नहीं कर सकते कि [illegible] कन्या जिसका मातृकुल उन जैसा ऊँचा नहीं है राजगद्दी की उत्तरा[illegible]धिकारिणी हो। वे उत्तम कुल का रक्त चाहते हैं, और चाहते हैं कि मैं किसी प्रधान मन्त्री के पुत्र को गोद ले लूँ। राजा ने कहा कि यदि उन्होंने ऐसा किया तो जब कन्या बड़ी होगी तब बहुत सम्भव है कि इन दोनों के बीच शत्रुता हो जाय। अतः इस भावी कुपरिणाम को रोकने के लिए मैं बार-बार सोचता रहा हूँ और अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस कन्या को मार डालना ही सर्वोत्तम है। तब ग्रिसेल्डा ने

यही रानी का नाम था, राजा को यह अत्युत्तम आदर्श रूप उत्तर दिया। उससे ज्ञात होता था कि वह पति के प्रति अपने धर्म-कर्म को कितना अधिक पहचानती थी। उसने कहा, "आप जानते हैं कि जिस दिन से मैं यहाँ आई हूँ, आपके साथ सिंहासन-सुख भोगने की मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं है। आपकी इच्छा, आपका संकल्प ही मेरी इच्छा और मेरा संकल्प है। मेरा व्यक्तित्व और मेरी इकाई सब आप में समायी हुई है। जहाँ तक वह आपके काम में आवे वहीं तक उसे जीवित रखना है, वह आपके उद्देश्य में रुकावट डालने के लिए नहीं है। यदि आपकी यही इच्छा है कि पुत्री मार डाली जाय, तो उसे मार डालिये। मैंने अपने अन्तः हृदय में कभी पुत्री को अपना नहीं समझा।" पुत्री अर्द्ध रात्रि में हटा दी गई, और कुछ घण्टों के ही पश्चात् राजा ने लौट कर कहा कि लड़की मारे जाने के लिए जल्लादों को सौंप दी गई। रानी शान्त, गंभीर और प्रसन्नचित्त बनी रही, जैसे कुछ हुआ ही न हो। यह वेदान्त है— कभी किसी वाह्य परिस्थिति से विचलित न होना।

राजा ने सोचा कि अब कोई मनुष्य मुझसे अप्रसन्न न रहेगा। प्रायः एक वर्ष के पश्चात् एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। यह शिशु सबका प्रीति-भाजन था, पर जब बालक पाँच-छः वर्ष का हुआ कि फिर गड़बड़ मची। राजा ने सोचा कि वर्तमान स्थिति में इस शिशु को भी मार डालना उचित होगा। यदि यह शिशु जीवित रहेगा तो एक घोर गृह-संग्राम प्रारम्भ हो जायगा, अतः राष्ट्रीय शान्ति स्थिर रखने के लिए इस शिशु को मरवा डालना चाहिए। रानी फिर भी मुस्कराती और प्रसन्नचित्त रही। उसने कहा कि समस्त राष्ट्र ही मेरी वास्तविक आत्मा है, मेरे पास अपना कुछ नहीं, मैं सूर्य्य के समान हूँ, मैं दान करना जानती हूँ। सूर्य्य की नाईं हम किसी से लेते कुछ नहीं, सदा देते रहते हैं। जब हमें कोई लालसा नहीं, हमें किसी से मोह नहीं, तो ऐसा कौन सा दुख हो सकता है जो हमारी प्रसन्नता में बाधा डाले। सूर्य्य निरन्तर

प्रकाश देता रहता है और फिर भी निरन्तर चमकता रहता है। वह शिशु भी छिन गया। कुछ वर्षों के पश्चात् एक तीसरा बालक उत्पन्न हुआ और जब वह तीन-चार वर्ष का हुआ, तो वह भी इसी भाँति छीन लिया गया।

अब जरा सोचो कि रानी ने कैसे अपने को संभाला, कैसे अपने हृदय को समझाया? जिस दिन वह महल में आई थी, उसी दिन से, वह कुछ काल के लिए एक एकान्त भवन में चली जाती थी, जहाँ उसने अपने गुदड़े रख छोड़े थे। वही उसका एकान्त भवन था, वहाँ वह अपने सुन्दर वस्त्र उतारकर वही पुराने गुदड़े पहन लेती थी, और फिर सोचा करती थी कि मै तो वही आत्मस्वरूप हूँ। अपने भिखारी वेष में वह ईश्वरत्व का अनुभव करती थी। शेक्सपियर ने कहा है: —

मुकुट धारण करनेवाला सिर बेचैन रहता है। वह उस झूठे मुकुट को उतार फेकती थी।

"वह अपने अन्तःकरण में निश्चय करती थी कि मै तो वही सरोवर के तट पर गाने और विचरनेवाली लड़की हूँ। यहाँ मै महल में बन्द कर दी गई हूँ, मेरी स्वतन्त्रता छिन गई है। किन्तु मैं अपने आप को दुःखी क्यों बनाऊँ, मुझे यहाँ के झंझटों से क्या मतलब? मुझे किसी से मोह नहीं, मेरी आत्मा तो इन सारी बातों से सदैव निर्लिप्त रहती है। मैं सदा अपने आत्मस्वरूप में मग्न रहूँगी।" इस प्रकार वह समस्त माया-मोह और आसक्तियों को परे फेंक कर अपने आपको पवित्र अनुभव करती थी। न किसी से बँधी थी, न उसका कोई उत्तरदायित्व और कर्तव्य था। इस प्रकार आप भी जब कभी सुख या दुःख आ पड़े, तब अपने आप को मोह-ममता, इच्छाओं और आवश्यकताओं से अलग कर सकते हो। आप वास्तव में परम स्वतन्त्र हो। जिस प्रकार रानी अपने आप को राज-महलों में ठहराये हुए थी, उसी प्रकार आप भी दुनिया में विचर सकते हैं।

एक दिन रात्रि में राजा उसके पास आया और कहने लगा—हम लोगों का हमेशा अपने पुत्र-पुत्रियों को मारते रहने से भी काम नहीं चलता, और मैं किसी को गोद लेने का विचार पसन्द नहीं करता। अतएव इस विषय पर खूब विचार करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि दूसरा विवाह कर लेना ही सबसे अच्छा होगा, तब अवश्य शान्ति स्थिर हो जायगी। रानी ने प्रसन्नता से इसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि राजा उसके आनन्द का हेतु न था, उसे आनन्द अपने भीतर की आत्मा से मिलता था, न कि दूसरों से। उसे सुख अपने भीतर के ईश्वर से मिलता था, न कि अपने पति, पिता अथवा बच्चों से। राजा उसकी प्रसन्नता को देख बड़ा चकित हुआ और पूछने लगा कि ऐसी स्थिति में तुम कहाँ रहना पसन्द करोगी। रानी ने कहा—आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है। राजा ने रानी से कहा कि यदि तुम यहाँ रहोगी, तो आनन्द और शान्ति भंग होने की संभावना रहेगी, अतः तुम्हारे लिए चला जाना ही सर्वोत्तम होगा। उसी क्षण उसने सुन्दर वस्त्र उतार डाले, और पुराने गुदड़े, साधु वेष के वस्त्र, फिर पहन लिये, और दूसरे दिन ही उसने महल छोड़ दिया। वह प्रसन्न-हृदय और सुखी थी और खुशी पिता के पास चली गई, जो स्वयं सदा [illegible] आनन्द मग्न था। राजा का नौकर जो वृद्ध पिता के पास रहता था, तुरन्त राजा के पास वापस भेज दिया गया।

एक दिन राजा रानी से सहानुभूति प्रकट करने के उद्देश्य से उसी जंगल की झोपड़ी में गया, किन्तु जब उसने उसे प्रसन्न और हँसमुख देखा, तब उसने उससे कोई ऐसी बात कहना व्यर्थ समझा। हाँ, राजा ने रानी से कहा कि क्या आप चलकर नई दुलहन का स्वागत करेंगी। रानी ने आनन्द से स्वीकार कर लिया। वहाँ रानी ने सारा प्रबन्ध ऐसे सुन्दर और प्रेम पूर्ण ढंग से किया कि सरदार और उनकी स्त्रियाँ इस सजावट का सौंदर्य देखकर चकित हो गईं। निश्चित कार्यक्रम

के अनुसार दुल्हन एक बड़ी सेना तथा स्वर्ण और रत्नों के दहेज के साथ आने वाली थी। वह बड़े गौरव और महत्त्व के साथ आई और बड़े राजसी ठाठ-बाट से राजा के आज्ञानुसार ग्रिसेल्डा तथा अन्य सभासदों की स्त्रियों द्वारा उसका स्वागत किया। ग्रिसेल्डा ने नई रानी को देखते ही उसे ऐसे प्यार किया, चूमा, हृदय से लगाया, जैसे कि वह स्वयं उसकी माता हो। ग्रिसेल्डा के साथ की महिलाएँ नववधू के सौन्दर्य को देख चकित हो गईं, किन्तु पुरानी रानी के आध्यात्मिक सौन्दर्य को देखकर तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। नववधू अपने साथ अपने दो छोटे भाइयों को भी लाई थी। उस देश की प्रथा के अनुसार महिलाओं और राजसभा के सदस्यों के लिए महल में एक बड़े प्रीतिभोज का प्रबन्ध किया गया था। ग्रिसेल्डा उस उत्सव की अध्यक्षा थी। जब लोगों ने पहली रानी के शान्त, गंभीर और सुखमय व्यवहार को देखा, तो उनके हृदय में बड़ा पश्चात्ताप हुआ, उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। उत्सव समाप्त होने के बाद ग्रिसेल्डा महल छोड़कर अपने पिता की कुटी में लौट जानेवाली थी। बड़े प्रेम और आनन्द से प्रीति-भोज-उत्सव चलता रहा। लोग आनन्द-मग्न थे, मानो उन्हें अन्य किसी बात का ध्यान ही न था। अन्त में रानी के विदा होने का समय आया। वह राजा से विदा हो रही थी और कह रही थी कि यदि फिर कभी मेरी आवश्यकता पडे, तो बिना संकोच के मुझे बुला लें। यह सुन-सुनकर सरलहृदया महिलाओं के हृदय द्रवीभूत हो गये और वे फूट-फूटकर रो पड़ीं। उन्हें अपनी पषाण-हृदयता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने रानी से कहा—"आप साधुपुत्री नहीं, ईश्वर पुत्री हैं।" वे वर्णन करने लगीं कि किस प्रकार रानी ने देश में शान्ति स्थिर रखने के लिए अपने बालकों को मार डालने के लिए आज्ञा दे दी—नव महारानी यह सब सुन-सुनकर रोने लगीं। उसने कहा—देवी, आपकी कन्या और पुत्रों का बध किया गया

और मुझे बुलाया गया, मैं इस रक्त की धारा को कैसे पार करूँगी। सबके सब राजा पर लांछन लगाने लगे। सभी उपस्थित थे, नई रानी और विदा होनेवाली पुरानी रानी। उसी समय राजा उठा और बोला, "हे पदाधिकारियो ! न्यायाधीशो ! और भद्रमहिलाओ ! तुम सब लोग रो-पीट रहे हो, केवल एक ग्रिसेल्डा ही शान्त है। मैं भी सुख-दुःख मिश्रित भावों के साथ रो रहा हूँ। हे प्रजागण ! मैं तुम्हें दोष नहीं देता, तुम मेरे बच्चे हो, मेरे नेत्र अश्रुपूर्ण हैं, पर वे शोकाश्रु नहीं, वे सुख और आनन्द के आँसू हैं। ईश्वर करे, आपके अश्रु भी आनन्दाश्रु हों।" फिर राजा ने ग्रिसेल्डा से कहा, 'ईश्वर करे, तुम सदा प्रसन्न रहो। केवल एक तुम्हीं इस समस्त राज्य में सुखी दिखाई देती हो।" मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि यह नव वधू, जो समीपवर्ती देश के राजा की पुत्री है, केवल गोद ली हुई लड़की है, और इसी प्रकार उसके छोटे भाई भी गोद लिये गये हैं। ये बच्चे अनाथों की नाईं मार्ग में पड़े हुए थे। उनके सौंदर्य के कारण उस राजा ने अपने बच्चों की नाईं इन्हें पाला था।" वास्तव में ये तीनों शिशु इसी राजा और ग्रिसेल्डा के पुत्र थे, क्योंकि वे जल्लाद, जिन्हें बच्चे मारने को दिये गये थे, ऐसे हृदयहीन न थे कि उन्हें मार डालते, अतः वे उन्हें पास के देश में छोड़ आये थे। धीरे-धीरे राजा ने सारी बातें लोगों को बताईं। जब उस देश के राजा ने इन सुन्दर बच्चों को खूनी जल्लादों के हाथों में देखा, तो उसने विचार किया कि अवश्य वे किसी राजा के बच्चे हैं; अतः उसने उनको अपना करके पाला। इस प्रकार अन्त में लोगों पर यह भेद खुल गया कि यह नव रानी, रानी नहीं, राजा की लड़की है तो फिर राजा की दूसरा विवाह करने की बात जाती रही। सबको आनन्द देनेवाली ग्रिसेल्डा ही रानी रही और उसके शिशुओं को राज्य मिला। पाठक, आप लोग देख सकते हैं कि ईश्वर कैसा दयालु और कृतज्ञ है, वह सदा अपना ऋण ब्याज सहित चुकाता है।

प्रत्येक विवाहित स्त्री को ऐसा ही उदार शाही भाव ग्रहण करना चाहिए। उसे प्रेम में सर्वस्व उत्सर्ग कर देना चाहिए। भारत में इस उत्सर्ग को पातिव्रत और पत्नीव्रत कहते है, जिसका अर्थ है कि पत्नी अपने पति में और पति अपनी पत्नी में जीवन धारण करे। पत्नी अपने पति में ही परमेश्वर देखे। पत्नी अपने शरीर और मन को अपने पति के अर्पण कर दे और पति अपनी पत्नी के हृदयस्थ ईश्वर के आगे उत्सर्ग हो जाय। इस संबंध में कोई व्यक्तिगत और स्वार्थमय भावना नहीं है। भारत में विवाह अधिकतर नदीतट पर खुली वायु में होता है, जहाँ मधुर वायु चलती रहती है, और सिर पर सूर्य्य उदित रहता है। भावना यह होती है कि स्त्री पुरुष का हाथ अंगीकार करती है और पुरुष स्त्री के हाथ को अंगीकार करके दोनों हाथों को ईश्वरार्पण कर देता है। जैसे ग्रिसेल्डा को कोई आसक्ति न थी, उसी प्रकार स्त्रियों को अपने तईं ईश्वर के आगे अर्पित कर देना चाहिए।

पुरुषों को भी ऐसा ही करना होगा। गृहस्थ जीवन सुखमय होगा और फिर होगा, सुख के सिवा कुछ और हो ही नही सकता। यदि पति पत्नी में और पत्नी पति में अपने आपको पूर्णतः लीन कर दे। जब दोनों का व्यक्तिगत जीवन बिल्कुल एक हो जाय, तभी प्रेम और जीवन में वास्तविक आनन्द मिलता है।

अरण्य-संवाद

संख्या (१२)

प्रश्नों के उत्तर

राम परमानन्द में लीन है ! !

वास्तविक आत्मा (ब्रह्म) अवतार या जन्म नहीं लेती, केवल सूक्ष्म शरीर अथवा परिच्छिन्न आत्मा ही जन्म लेती है ; वास्तविक आत्मा जन्म-मरण से परे है। सारा विश्व मेरा शरीर है, वायु मेरी श्वास है, वृक्ष मेरे लोम हैं, नदियाँ मेरी नसे हैं, पर्वत मेरी अस्थियाँ हैं।

किसी-किसी स्थान में संध्याकालीन अरुणिमा देर तक टिकती है, और किसी स्थान में सूर्य्य एकदम दिग्मण्डल पर दृग्गोचर होता है। चाहे आप बीच के स्थानों में पड़े रहें, चाहे उड़ें, यह पूर्णतः आपकी इच्छा पर निर्भर है, चाहे जो मार्ग ग्रहण करें। इच्छा ही शक्ति है, जो शक्ति प्रकाश, उष्णता, विद्युत्, शब्द आदि अनेक आविर्भावों में प्रकट होती है। पंच-भूत, (तन्मात्रा) शक्ति का ही एक प्रकार का विशेष रूप है। लेबनिट्ज परमाणुओं को शक्ति के केन्द्र मानता था ; ठोस पदार्थ भी मेरी इच्छा हैं। बर्फ जल है और जल भी जल है। रूप मैं हूँ और रूप में निवास करनेवाला भी मैं हूँ। आप ही प्रत्येक वस्तु हो। इसी आत्मज्ञान में जाग उठो , योग-दर्शन आपके पीछे-पीछे चलेगा। प्रत्येक वस्तु आपके पास खिंची आयगी। लोग सुषुम्ना नाड़ी के चक्कर में पड़ जाते हैं, मानो राजमार्ग छोड़कर गलियों में भटकने लगते हैं। यदि आप अंग्रेजी के आठ 8 अंक को एक दूसरे के ऊपर रखते चले जायँ, तो खाली जगह में लगातार दो छिद्र बनते दिखाई देंगे, यही इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ हैं। पुस्तकें इन्हीं नाड़ियों के खोलने पर जोर देती हैं। जिस मनुष्य ने

इन नाड़ियों के बारे में बहुत पढ़ा था और उन्हें खोलने के लिए बारह वर्ष तक श्रम किया था, उसे राम ने एक रहस्य बतलाया था। आज जब अकस्मात् वह आया, तो उसने कहा कि इतने थोड़े समय में ही उसने सब कुछ पा लिया और पहले की अपेक्षा अब वह अपने उद्देश्य के अधिक समीप पहुँच गया है। जो लोग भ्रम में पड़ जाते हैं वे ऐसी बातों पर जोर दिया करते हैं—जैसे सुषुम्ना नाडी का खोलना। भोजन पहले उदर में पहुँचता है, फिर आक्सीजन गैस से मिलकर और शरीर में फैलकर अन्य अनेक गैसों से संयोग पाता है और अन्त में नसों की नहरों में दौड़ता है, परन्तु इसमें भोजन के इन परिवर्तनों को समझने की क्या आवश्यकता है? जैसे भोजन स्वयं अपनी चाल चलता जाता है, इसी प्रकार जब कोई अनुभव की इच्छा करता है, तब उसे राजयोग पढ़ने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। ठीक राह पर चलने लगो, भेद अवश्यमेव अपने आप खुल जायगा। श्वास पर नियंत्रण करना है, तो निरर्थक बातों में समय नष्ट करने से लाभ? इन क्रियाओं से कुछ न सरेगा, प्राण का निग्रह मन का निग्रह नहीं है; इन मार्गों के अवलम्बन से कोई मनुष्य अपने मन को एकाग्र नहीं कर सकता। रोकी हुई श्वास से मन पर अधिकार नहीं पाया जा सकता। यह झूठा तर्क है! प्रत्येक मनोवैज्ञानिक यह बात हम पर थोपना चाहता है कि प्राणायाम से मन का निग्रह होता है। मन को वश में करो, प्राण स्वतः वश में हो जायगा।

राम ने इसी दूसरे मार्ग का अवलम्बन किया है। विपक्षी उपदेशों के होते हुए भी राम उनके तर्क की उपयोगिता न समझ सका। राम ने मन को रोका, श्वास ने उसका अनुसरण किया। एक बार राम स्नान करने तालाब में घुसा और डुबकी लगाई। उपस्थित मित्रों ने भी नहाया, पानी में घुसे, किन्तु झट निकल आये और राम की बाट देखने लगे, किन्तु वह दिखाई न दिया। उन्होंने समझा—डूब गये या मगर ने खा लिया, सबके सब भयभीत होने लगे कि राम ऊपर आया, और

सबको चकित कर दिया। राम ने बतलाया—केवल संकल्पमात्र से श्वास वश में की जा सकती है। वास्तविक आत्मा के स्वरूप में बैठकर ' भव करो और ईश्वर के साथ अभेद हो जाओ। श्वास तो आपका एक तुच्छ, क्षुद्र सेवक है। आप तो विश्व की श्वास पर शासन करनेवाले हो। संकल्प के बल से अपने आपको माया से मुक्त करो। सकल्प ही से माँ बच्चे को नाम-रूप में फँसा देती है। ज्योंही उसने उसके कान में कहा—मेरे मोहन, मेरे सोहन! त्योंही, मानों उसने उसे शरीरधारी मोहन बना दिया।

जागो! हे दिव्य चेतन शक्ति। जागो! विश्व के प्रभु! ब्रह्माण्ड के शासक! उठो, जागो, मुख्य बात तो है अपने स्वरूप का अनुभव करना। सूर्यों का सूर्य! प्रकाशों का प्रकाश अनुभव करना! वही मै हूँ। तुम पुरुष या स्त्री, राजा या रंक, धनाढ्य या भिखारी बने हुए हो, क्यों? तुमने आप ही ऐसा निदिध्यासन किया है, इसलिए तुम बेशक वैसे बन गये हो। अपने आपको ईश्वर मान करो, तुम ईश्वर हो जाओगे। घर के बनाने में बहुत समय लगता है, पर खोदने में कितना? तुमने अपनी कालकोठरी बनाने में बहुत समय लगाया है, उसे खोद डालो, तो तुम देवों के देव हो। अपने आपको वास्तविक आत्मा में बैठाओ। अपने आपको प्रकाशों के प्रकाश में जमा दो। समस्त संसार का तमाशा देखो। उषा काल के समय जब सूर्य क्षितिज के नीचे होता है, तब भारत में यह समय बडा सुहावना होता है, उस दृश्य से हृदय ऊँचा उठता है। जहाँ एक बार हृदय उठा, वहाँ तुम स्वर्ग के शिखरों को भी छू सकते हो। ठीक उस प्रकार जैसे हम पहले गुल्ली को उछालते हैं, और जब वह ऊपर उठती है, तो एक जोर की चोट मारते हैं जिससे वह वायु-मण्डल में दूर तक भनभनाती हुई चली जाती है। उसी प्रकार मन को वायुमंडल में ऊँचा उठाओ, उसके बाद उसके लिए दौड़ना सरल हो जायगा, यहाँ तक कि वह अन्त में सर्वोच्च शिखर पर ईश्वर रूप हो

जायगा। पक्षियों का गाना, पवन की सनसनाहट, निर्झर की कलकल स्फूर्तिदायक होती है, उसे बढने का अवसर दो, ओ३म् गाओ, निदिध्यासन की भाषा में गाओ। अतः सूर्य की ओर ऐसे देखो जैसे दर्पण में अपने आपको देखते हो, द्वैत की गंध नहीं! सर्वोच्च मेरी आत्मा है। मैं वही हूँ। भारतीय स्त्रियाँ अपने अँगूठों में छोटी आरसी पहनती हैं, और उसमें झाँकती हुई वे कांच का मूल्य नहीं करतीं, वरन् अपने ही मुख को अपने से बाहर देखती हैं। बाहर देखते हुए भी उसे अपना ही मुख समझती है, इसी प्रकार वेदान्ती अनुभव करता है कि सूर्य उसकी अपनी आत्मा है। मै सूर्यों का सूर्य हूँ। यह सूर्य तो मेरी छाया मात्र है। ओ३म् का अर्थ है "वह मै हूँ," हमारी भाषा, ओष्ठ, निदिध्यासन, वर्म सबसे यही एक ध्वनि निकलना चाहिए।

"बच्चे! इधर आ!" तुम्हारे इन शब्दों में क्या कोई जोर है? नहीं। रोज ही बच्चों से ऐसा कहा करते हैं। तुम्हारा एक दूसरा बच्चा, जो बहुत दिनों से अनुपस्थित था और जिसे देखने के लिए तुम इच्छुक थे, आ गया, तुम दौडे—"अरे बच्चे इधर आ, इधर आ!" शब्द तुम्हारी प्रत्येक नस नाडी से निकलते हैं। तुम उनकी ओर दौडते हो, उससे चिपट जाते हो, उन्हें अंक में भर लेते हो, यही भाव की भाषा है। अपने शरीर के रोम-रोम में ओ३म् उच्चारण करो। पहले धीरे-धीरे से प्रारम्भ करो; ध्वनि पहले गले से निकलती है, फिर वक्षस्थल से, फिर और अधिक नीचे से, यहाँ तक कि रीढ़ की हड्डी के नीचे से निकलने लगती है। बस, विद्युत् के धक्के से तुरन्त सुषुम्ना नाडी खुलती है और श्वास-प्रश्वास सुरीली हो जाती है। रोग मात्र के साथ कीटाणु भाग खडे होते हैं। एक वेदान्ती सूर्य के साथ अपना उसी प्रकार का संबंध समझता है, जैसे चन्द्रमा का सूर्य्य के साथ है। चन्द्रमा आप ही आप चमकता प्रतीत होता है, परन्तु सारी चमक सूर्य्य से आती है। इसी प्रकार सूर्य्य अपने प्रकाश से प्रज्वलित प्रतीत होता है, परन्तु वह प्रकाश उसे मुझ से प्राप्त होता है।

स्वप्न में तुम भिन्न-भिन्न पदार्थ देखते हो, आज एक बिजली का गोला देखा। तुम प्रकाश के बिना कुछ नहीं देख सकते, किन्तु स्वप्न में पदार्थों को दिखाने के लिए कोई प्रकाश नहीं होता। वह कौन सा प्रकाश है जिसने तुम्हें बिजली का गोला या हीरा दिखाया था? वह आत्म-प्रकाश, तुम्हारी अपनी आत्मा का प्रकाश है। स्वप्न में सूर्य्य का प्रकाश तुम्हारा, अपना प्रकाश है। सूर्य्य की महिमा तुम्हारी महिमा से दिखायी देती है। वेदान्ती ऐसा ही अनुभव करता है। भौतिक जगत् का सूर्य्य प्रकाश व ज्ञान का प्रतीक है; इस लिए सूर्य्य की ओर देख कर मैं अनुभव करता हूँ कि मै ज्ञान-ज्योति हूँ। सूर्य्य शक्ति का चिह्न है। ग्रह तारे आदि उसी से घूमते हैं और वही सबको जीवन देता है।

ॐ, ओ३म् का अनुभव करने की यह एक दूसरी विधि है

अ, जीवन का प्रतीक है,

ऊ, चित् (ज्ञान) का प्रतीक है और

म् आनन्द का प्रतीक है

प्राचीन लेखनशैली बीजाक्षर पद्धति में सूर्य्य स्वर्णाक्षरों में अंकित ओ३म् है। एक लिखे हुए शब्द की नाई यह ओ३म् और यह सूर्य्य उसका भौतिक प्रतीक, मेरी ही प्रतिमा है।

सूय्य सौन्दर्य्य का प्रतीक है, ग्रहों को आकर्षित करता है, कैसा प्रकाशवान्! कैसा शानदार! आनन्द का प्रतिनिधि, आनन्द का स्वरूप। अनुभव करो कि मै तत्व हूँ, सत्य हूँ, तेज हूँ। विशेषण मात्र मेरे ही हैं। मुझ में है, सब कुछ मै हूँ।

सच्चिदानन्द! सूर्य्य तो मेरा ही एक छोटा सा स्थूल संकुचित प्रतीक है। मै ओ३म् की उपासना नहीं करता, ओ३म् ही मुझे जपता है। मैं सूर्य्य हूँ जिसके चारों ओर सभी ग्रह आकाश और संसार में चलने वाले चक्कर काटते हैं। अचल और सनातन! मेरे सामने यह सारा संसार मुझे अपने सभी अंग और पहलू दिखाने

के लिए, अपनी सौंदर्य्य की राशि दर्शाने के लिए चक्कर लगाता है। सूर्य्य मेरी खातिर मेरे सामने चमकता है।

ईसा का हृदय,
शेक्सपियर का मस्तिष्क,
प्लेटो की बुद्धि,

सबके सब मेरे प्रताप से पलते है, सबके सब मेरे तेज और प्रकाश को पीते हैं। सूर्य्य की उपस्थिति से लोग यह सोचने लगते हैं कि पुट्ठे इसकी शक्ति से हिलते हैं। अरे, यह तो मेरी दिव्य उपस्थिति से सब कुछ हो रहा है।

मुझ में निवास करो, सूर्य्यों का सूर्य्य मुझ में रहता है, प्रकाशों का प्रकाश मै हूँ। मेरे सत् स्वरूप आर्णव में ये सब लहरें उठ रही हैं। मै राजाओं का राजा हूँ। राजाओं की भाँति, पुष्पों की भाँति मैं सूर्य्य की किरणों में मुस्करा रहा हूँ। मै ही शूरवीरो के पुट्ठों को हिलाता हूँ। प्रत्येक स्थान पर मेरी ही इच्छा पूरी हो रही है। मेरा राज्य, मेरा प्रताप नित्यप्रति सब जीवों को भोजन देता है। वही इस पृथ्वी को घुमाता है। बुरे विचारों और सांसारिक इच्छाओं को मेरे सम्मुख आने का अधिकार नहीं।

मेरी पवित्र आत्मा की उपस्थिति में छोटी छोटी वासनाये कैसे हस्तक्षेप कर सकती है। क्रोध, तृष्णा आदि तमोगुण की वस्तुये हैं। मैं सबमें व्यापक हूँ, उच्चतम में और नीचतम में। मै दर्शक, तमाशा दिखाने वाला और तमाशा करने वाला हूँ। ईसा में भी मै हूँ और नीच से नीच भी मै हूँ! सब मै!! जो कुछ भी तुम्हारी इच्छाओं का पदार्थ है, वही मै हूँ। बिजली की गरज मै हूँ; फ्रैंकलिन, न्यूटन, काल्विन सभी ईश्वरीय दूतों के हृदय में उमँडता हुआ सागर मै हूँ। उद्यानों और प्राकृतिक दृश्यों का मुख्य स्रोत मैं हूँ। इस भाव से ओ३म् को इस अर्थ में ग्रहण करो। मार्ग सुगम है! ओ३म् का उच्चारण करो, उसी मे

रहो, उसी में देवताओं की नाईं विचरो। अशुभ, निम्न आकांक्षाओं के सामने सिर झुकाना मानों आत्माभिमान का निरादर करना है। अपनी गौरवपूर्ण विभूति और महिमा में विचरण करो! यदि लौकिक इच्छाओं से विचलित होते हो, तो ओ३म् का उच्चारण झूठा है।

सुषुम्ना नाड़ी को खोलने, सहस्रदल कमल को जगाने में व्यर्थ समय नष्ट न करो। यह समय का दुरुपयोग है। ये सब स्वतः सब के सब तुम्हारे पास खिच आयेंगे। तुम अद्भुत फल भोगोगे। भय, चिंता, बेचैनी से ऊपर उठो। तुम्हें ज्ञान का अनुभव होगा। संसार स्वयं तुम्हारे पास चला आयेगा। प्रत्येक पदार्थ तुम्हें सम्मान देगा, तुम्हारी सेवा करेगा। टेढ़े-मेढ़े मार्ग में भटक कर अपने आप को भ्रम में मत डालो, अन्यथा तुम्हें पछताना पड़ेगा।

ॐ! ॐ!! ॐ.!!

But thou art the root of things
present, past, and future.
Thou art father and mother;
Thou art masculine,
Thou art feminine,
Hail! root of the world;
Hail! centre of things,
Unity of Divine numbers.

* *

Thou art what produces,
Thou art what is produced,
Thou art what enlightens,
Thou art what appears,
Thou art what is hidden,
By Thy own brightness.

ॐ! ॐ!! ॐ!!!



भारतवर्ष की प्राचीन आध्यात्मिकता

(२८ जुलाई, सन् १६०४ को दिया हुआ व्याख्यान)

महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में मेरे इष्ट देव !

जब राम अमेरिका में पहले-पहल आया, तो सियाटल नगर में उतरा। वहाँ राम का अध्यात्मवादियों (Spiritualists) ने स्वागत किया। उन्होंने इस पुण्य भूमि में पहिले-पहल राम का स्वागत किया। सियाटल नगर के इन अध्यात्मवादियों में राम के कुछ हार्दिक और परम प्रिय मित्र भी है। पोर्टलैण्ड औरेगन में पुनः अध्यात्मवादियों ने राम के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया। और दक्षिण-अमेरिका में भी राम उन अध्यात्मवादियों से मिला; उन प्रेमी आत्माओ से मिला जिन्हें राम अपने जीवन में पहले ही देखा था। अमेरिका के अध्यात्मवादियों के सम्बन्ध में राम का विचार है कि वे परम उदार और विशाल चित्त, तथा परम कारुणिक, सच्चे और असली ईसाईयों में से है। राम को अपने इन स्वजनों से पुनः मिलने में बडा आनन्द हुआ है। राम अब अमेरिका से शीघ्र ही जानेवाला है। और राम उन लोगों के समक्ष, जिन्होंने इस भूमि में राम का स्वागत किया था, एक बार पुनः व्याख्यान देने का अवसर मिला है।

यहाँ, ऐ राम के प्यारे मूर्तिपूजको ! हम सब भाई-भाई हैं, अर्थात् यहाँ हम सब एक ही विचार के भ्राता एकत्र हुए हैं। मूर्तिपूजक वह है जो बन-भूमि में रहता है, और इस देश में हम आकाश, वृक्ष और बादलों की छत्र-छाया के नीचे एकत्र है। अतः हे प्यारो ! हम सब एक बार पुनः मूर्तिपूजक भाई-भाई हैं। राम अपने मूर्तिपूजक भाइयों के समक्ष व्याख्यान देने से अत्यन्त प्रसन्न है। राम पहले भारत के प्राचीन

अध्यात्मवाद के विषय में तुम लोगों से कुछ बातें कहेगा, और फिर दूसरे विषय पर आयगा।

भारतवर्ष का प्राचीन अध्यात्मवाद देखने में इस देश के प्रेतवादियों या अध्यात्मवादियों की संगठित सस्थाओं के समान बिल्कुल नहीं है। तथापि हमें भारत के प्राचीन गन्थों में दिव्यदर्शी पुरुषों की शक्तियों के उदाहरण और वर्णन बार-बार पढ़ने को मिलते है।

भारतवर्ष में जिसे दिव्य दृष्टि-कहते है, उसी के अधीन राम काम करता, पढता, लिखता-लिखाता है। भगवद्गीता के सम्बन्ध में तुमने बहुत कुछ सुना है। यह एक मनुष्य, संजय द्वारा कही गई है। श्री भगवद्गीता के आरम्भ में तुम संजय का नाम देखते हो। यह संजय उसी युद्ध भूमिका का एक व्यक्ति था, जिसमें अर्जुन को गीता सुनाई जा रही थी। रण-भूमि से संजय लगभग दो सौ मील की दूरी पर था। उसके गुरु महराज ने उसे दिव्य-दृष्टि नाम्नी शक्ति का वर दिया। इसलिए युद्ध-क्षेत्र से दो सौ मील की दूरी पर रहते हुए भी यह रणभूमि में जो कुछ हो रहा था, उसे बतलाता जाता था। युद्ध के कारनामों में उस गीत का गायन भी था, जो भगवद्गीता के नाम से विख्यात है। तुम्हें शायद स्मरण होगा कि इस देश में माध्यमों के कुछ लेखों, कार्यों और कथनों के विषय में एक मुकद्दमा चला था। राम के विचार से अत्यन्त आश्चर्यजनक और सर्वोपरि श्रेष्ठ ग्रन्थ जो इस संसार में सूर्य तले कभी लिखे गये, उनमें से योगवाशिष्ठ एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति इस मनुष्य लोक में आत्मज्ञान पाए बिना नहीं रह सकता। वह ग्रन्थ भी ठीक ऐसी ही स्थिति में लिखा गया था। फिर भारतवर्ष की सबसे बड़ी पुस्तक, जो रामायण के नाम से प्रसिद्ध है, वास्तविक घटना से सैकड़ों वर्ष पूर्व श्रीवाल्मीकि ऋषि द्वारा लिखी गई थी। भारतवर्ष की कुछ और पुस्तकों के विषय में ऐसे ही वृत्तान्त मिलते हैं।

फिर, संसार भर की सबसे बड़ी पुस्तक महाभारत में, जिसमें चार लाख श्लोक हैं, एक महारानी की कथा है, जो स्वप्न अथवा ध्यान में एक अत्यन्त सुन्दर राजकुमार को देखती है और उसके प्रेम में आसक्त हो जाती है। वह उसके प्रेम में इतनी अधिक आसक्त हो गई कि उसका शरीर प्रेम के अति तीव्र भाव के कारण बीमार पड़ गया। उसके पिता ने सभी प्रकार के वैद्य और चिकित्सक बुलाये, परन्तु उन से कुछ लाभ न हुआ। अन्त में किसी ने मालूम कर लिया कि उस का रोग तो प्रेम का मंगलकारी रोग है। स्वयं महाराजा के मन्त्री महोदय ने आकर उसकी नाड़ी-परीक्षा की, और एक सर्वाधिक दक्ष चित्रकार को आज्ञा दी कि वह भारतवर्ष के समस्त सुन्दर राजकुमारों के चित्र बनाये। यह चित्रकार एक स्त्री थी। इससे तुमको कुछ परिचय मिल जायगा कि भारतवर्ष की स्त्रियाँ कैसी योग्य थी और अपने देश में किस पदवी पर पहुँची हुई थीं। यह स्त्री-चित्रकार आई और दीवाल के एक तखते पर उसने भारतवर्ष के तत्कालीन बड़े-बड़े राजाओं के चित्रों पर चित्र खींच डाले। यह मन्त्री उस राजकुमारी की नाड़ी की गति को ध्यान से देख रहा था। जब नारी-चित्रकार ने श्रीकृष्ण का चित्र खींचा, तब उस राज कुमारी की नाड़ी कुछ जोर से धड़कने लगी, और मंत्री कुछ चौकन्ना हुआ। उसने सोचा कि सम्भवतः वही यह मनुष्य है जिसे उस कुमारी ने अपने स्वप्न में देखा है। परन्तु उसे जान पड़ा कि नाड़ी अभी पूरी चाल पर नहीं आई है, इसलिए उसने चित्रकार को आज्ञा दी कि तुम चित्र पर चित्र ,खींचते जाओ। अन्त में श्रीकृष्ण के सबसे छोटे पुत्र का चित्र उसने खींचा। और जब वह चित्र खिंच गया, तब देखते ही देखते, नाड़ी का तो कहना ही क्या, कुमारी का संपूर्ण हृदय धरती तक उछलने और धड़कने लगा। तब मंत्री महोदय ने यह परिणाम निकाला कि बस, यही मनुष्य इस राजकुमारी की उदासी को दूर कर

सकेगा। इसे हम कोरी कथा ही नहीं, किन्तु एक ऐतिहासिक तथ्य मानते हैं।

अब उस स्त्री-चित्रकार के संबंध में वहाँ क्या वर्णन मिलता है? क्या देश भर के समस्त राजाओं और राजकुमारों को उसने देखा था? नहीं। वह उसी दृष्टि या अवस्था के वश में थी, जिसे हम दिव्यदृष्टि कहते हैं। वह उस सर्वरूप परमात्मा के अभेदतारूपी स्फुरण के इतनी अधीन थी कि प्राकृतिक पुस्तक उसके आगे मुहरबन्द नहीं रह सकती थी। वरन् उसके आगे संसार की प्रत्येक वस्तु एक खुली हुई पुस्तक के समान थी। राम इस प्रकार की अनेक घटनाओं के उदाहरण जितने आप चाहें दे सकता है। पर इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस जगत् में स्वप्नदर्शन और दृष्टि, या यों कहो कि एक भीतरी प्रकाश भी होता है, जो इस संसार में तुम्हें समस्त ज्ञान का भाण्डार बना देता है।

वेदान्त शास्त्र ऐसे बहुत से सुन्दर उदाहरणों और दृष्टान्तों द्वारा लोकप्रिय और लोकप्रसिद्ध बन गया है। विश्वविद्यालयों के अध्यापकों द्वारा तथा पुस्तकों के अध्ययन से जो प्रकाश (ज्ञान) तुम लाभ करते हो, उस प्रकाश से पृथक् अपने भीतर के आध्यात्मिक प्रकाश को पहचानने के लिए राम एक उदाहरण देता है।

ऐसा कहा जाता है कि किसी समय एक राजकुमार अपने एक अत्यन्त सुन्दर भवन को अद्भुत रीति से चित्रित करवाना चाहता था। बहुत से चित्रकार इस आशय से उसके पास आये कि वे इस काम के लिए राजकुमार द्वारा सर्वोपरि चित्रकार के रूप में चुने जायँ। राजकुमार ने उनकी परीक्षा ली। दो दीवालें आमने-सामने बराबर तैयार की गईं, और दो चित्रकार उन दीवालों को रंगने के लिए लगाये गये। उन दीवालों पर परदे डाल दिये गये, जिससे एक चित्रकार का काम दूसरा चित्रकार न देख सके। अपने-अपने कार्य को समाप्त करने के लिए उन्हें दो सप्ताह का समय दिया गया। एक चित्रकार ने दीवाल पर

संसार भर की बड़ी पुस्तक महाभारत के सारे दृश्यों को अंकित कर डाला। और निःसन्देह उसका काम अत्यन्त विचित्र और प्रशंसनीय बन पड़ा। दूसरा चित्रकार क्या करता रहा, उसके विषय में अभी तुम्हें नहीं बताया जायगा। दो सप्ताह बीत गये और राजा साहब अपने कर्मचारियों के साथ उस स्थल पर आये। पहले चित्रकार की दीवाल पर से परदा उठाया गया। दीवाल पर हजारों एक से एक सुन्दर चित्र खिंचे हुए थे। जिस किसी ने दीवाल पर दृष्टि डाली, वह चकित रह गया। वे सब दंग और अत्यन्त आश्चर्यान्वित दशा में खड़े थे। कैसा प्रशंसनीय काम था! सब देखने वाले चिल्ला उठे, "इसी को पारितोषिक दिया जाय। आप जो सर्वोत्तम काम कराया चाहते हैं, उसके लिए इसी को चुनिये, इसी को विजयी मानिये, इसी को इनाम दीजिये।" तब राजा ने दूसरे चित्रकार से अपनी दीवाल पर से परदा उठाने के लिए कहा और जब परदा उठाया गया, तो सब लोग व ज्यों के त्यों खड़े रह गये। उनके ओष्ट अधखुले थे, श्वास रुका हुआ था, और उनके नेत्र आश्चर्य में डूबे थे। वे एक शब्द भी न बोल सके। वे मानो स्वयं आश्चर्य और विस्मय के चित्र बने हुए थे। क्यों? इस दूसरे चित्रकार ने ऐसा क्या जादू कर डाला? उस पहले चित्रकार की दीवाल पर जो कुछ बना था, वही सब का सब इस दूसरे चित्रकार की दीवाल पर अंकित था। केवल अंतर इतना था कि जहाँ पहले चित्रकार के चित्र कुछ खुरखुरे, ऊँचे-नीचे और भदरंग से थे, वहाँ इस दूसरे चित्रकार के चित्र इतने साफ सुथरे, इतने स्वच्छ, इतने कोमल, और इतने चमकदार थे कि उस पर बैठने वाली मक्खी भी फिसल पड़ती थी। ओह! कैसी सुन्दर चित्रकारी थी वह! और सबसे बढ़कर दूसरे चित्रकार के चित्रों में उन्होंने यह भी विचित्र विशेषता देखी कि चित्र दीवाल की सतह से तीन गज भीतर अंकित थे। यह काम कैसे किया गया होगा? दूसरे चित्रकार

ने अपनी दीवाल को इतना चमकीला, स्वच्छ, और समतल बना रखा था कि जैसे स्फटिक हो। दीवाल सचमुच शीशा, दर्पण बन गई थी। दर्पण के समान उसमें वही सब कुछ दिखाई पड़ने लगा, जो पहले चित्रकार ने अंकित किया था, किन्तु ऊपरी सतह के बहुत भीतर—तुम जानते हो कि दर्पण में चीज़ उतनी ही भीतर प्रतिबिम्बित होती है, जितनी दूर वह उससे बाहर रहती है।

इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति की दो रीतियाँ हैं। एक तो रटना अर्थात् बाहर से भीतर ठूँसना, बाह्य चित्रकारी, एक चित्र के बाद दूसरा चित्र तथा एक ख्याल के बाद दूसरा ख्याल भरना। इसमें सब प्रकार की विद्यायें और विचार आ जाते हैं जैसे भूगर्भ विद्या, फलित-ज्योतिष, ईश्वर विद्या, निरुक्त और सभी प्रकार के अध्यात्मशास्त्र तथा अभ्यास की जा सकनेवाली विद्यायें। मस्तिष्क में ठूँसना, ज्ञान प्राप्ति की यह एक विधि है। राम का इस कथन से यह अभिप्राय नहीं कि तुम इस रीति से ज्ञान प्राप्त नही कर सकते। तुम कर सकते हो जैसे कि पहले चित्रकार ने दीवाल पर सर्व प्रकार के रंगों का उपयोग करके चित्रों को अंकित किया था। परन्तु ऐ महाभाग! सांसारिक ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त करने की एक दूसरी विधि भी है। यह भीतर से शुद्ध होने की रीति है। यह रीति कुछ ठूँसना, या जबरदस्ती भीतर घुसेड़ना नहीं, किन्तु इस ठूँसने को परे करके, जो विचार आवश्यक हैं, केवल उन्हीं को उदरस्थ करना, स्वायत्त करना है। जैसा कि इमरसन का कथन है:—

"Heave thine with nature's heaving breast
And all is clear from east to west"

अर्थ—धड़कन अपनी प्रकृति की धड़कन के संग कीजिये।
पश्चिम से पूर्व तक स्वच्छन्द सब लख लीजिये।

सर्व के साथ अपनी अभेदता अनुभव करने की यह एक विधि है। वाल्ट व्हिटमेन का कथन है कि जब तक तुम अपने को सर्वरूप भान

नहीं करते, तब तक तुम सबको जान नहीं सकते। दूसरे शब्दों में सब की अभेदता का ज्ञान ही सबका यथार्थ ज्ञान कराता है।

सोचिये, सब आदिकालीन विचारक और बुद्धिमान् पुरुष कहाँ से अपना ज्ञान लाये थे? हम लोगों के यहाँ अनेकों अध्यात्मशास्त्र के प्रधानाध्यापक, ब्रह्मविद्या के आचार्य, माननीय गिरजाघरों के मन्त्री और मन्दिरों के मुख्याधिष्ठाता हुए हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन-काल मोटी-मोटी पुस्तकों से भरे हुए बड़े-बड़े पुस्तकालयों के अध्ययन में ही व्यतीत कर डाला है। और फिर भी उनमें से कितने ऐसे है जो ऐसा नवीन मधुर और छोटा सा उपदेश देता हो, जैसा कि प्रेममूर्ति हजरत ईसा के मुख से निकला था। तुम लोगों के यहाँ कितने ही लेखक और व्याख्यानदाता हैं, परन्तु ऐ प्यारो! अमेरिका में जितने भी व्याख्यान आज तक हुए है, उनमें से एक भी ऐसा प्रभावशाली नहीं हुआ, जैसा कि उन सप्त शब्दों का उपदेश। तुम इन सात शब्दों के उपदेश से परिचित हो:—"Give me liberty or give me death", मुझे स्वतन्त्रता दो या जान से मुझे मार डालो। आज भी इतने गणित शास्त्र के अध्यापक और दर्शन शास्त्र के आचार्य्य है। परन्तु उनमें से कितनों ने न्यूटन की उस छोटे सी प्रिन्सिप्या (Principia of Newton) के समान ग्रन्थ लिखा है। कहाँ से उस न्यूटन ने वह सब ज्ञान प्राप्त किया था? जो गणित विद्या उसने पुस्तकों से प्राप्त की उससे कहीं अधिक उसने संसार को दी। अवश्य ही उसने किसी ऊँचे कारण (मूल स्वरूप) से इस विद्या को पाया था। आजकल विश्वविद्यालयों में शेक्सपीयर के ग्रन्थ एम० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाये जाते हैं। पर गरीब शेक्सपीयर किसी विश्वविद्यालय का उपाधिधारी तो था नहीं। तथापि उसने ऐसे ग्रन्थ लिख मारे कि जो लोगों को विश्वविद्यालयों से बी० ए० में उत्तीर्ण होने के लिए अवश्य पढ़ने पड़ते हैं। आज कल का बड़ा वैज्ञानिक हरबर्ट स्पेन्सर किसी कालेज का उपाधिधारी विद्यार्थी

नहीं था। किसी ने उससे पूछा; "क्या तुम सर्वभक्षी अर्थात् सभी प्रकार की पुस्तकों के अधिक पढ़ने वाले हो?"। स्पेन्सर ने उत्तर दिया, "नहीं, भगवन्! यदि मै दूसरों के समान अधिक पढ़नेवाला होता, तो मैं भी दूसरों के समान अत्यन्त भूल जानेवाला मूर्ख होता।" अब हम देख सकते हैं कि इन मौलिक कार्यकर्ताओं ने जिन्होंने विज्ञान की उन्नति की, अपने मूल विचारों को अपने से पूर्व लिखित पुस्तकों से नहीं प्राप्त किया था। यदि इन्होंने उन्हें पुस्तकों से निकाला होता तो ये कदापि मौलिक न होते। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यह मौलिक ज्ञान कहाँ से आता है? इस मौलिकता का स्रोत कहाँ है? प्रिय आनन्द रूप मधुरात्माओ! जानकर या अनजाने, इन शब्दों पर ध्यान दो, यह ज्ञान तो अपने भीतर के दिव्य स्वरूप, प्राणस्वरूप और प्रकाशस्वरूप (अर्थात् अपने सच्चिदानन्द स्वरूप) के साथ एक होने से ही मिलता है। इसके अतिरिक्त और कोई मूल या कारण नहीं है। समस्त प्रकाश, प्राण (जीवन) और स्वर्गों के स्वर्ग का मूल तुम्हारा असली स्वरूप व शुद्ध आत्मा है। आओ, हम एक सैकण्ड के लिए इस विचार या ध्यान से मौनावलम्बन करें कि "सम्पूर्ण जीवन, सम्पूर्ण प्रकाश हमारे अन्दर है।" सब कुछ मेरे भीतर है।

अब राम तुम्हें वह विधि बतलाता है जिसे भारतवर्ष के ऋषियों ने इस दिव्य दृष्टि के पाने में वर्ता था। भारतवर्ष में यह कहा जाता है कि वेद ईश्वर से ऋषियों द्वारा प्राप्त हुए। इसका अर्थ यह है कि जिन लोगों ने इन वेदों को लिखा, उन्होंने इनको उस अवस्था में लिखा जब कि उनका देहाध्यास, परिच्छिन्न भावना (तुच्छ अहंभावना) और व्यक्तिभावना (आत्माभिमान) नितान्त लुप्त था। इसलिए जिन मनुष्यों द्वारा ये वेद प्रकट हुए, वे ऋषि कहलाते है। परन्तु वे इन वेदों के रचयिता (जनक) नहीं है। ऋषि शब्द का अर्थ है केवल दिव्य प्रकाश का देखनेवाला या दिव्य सत्य का द्रष्टा (त्रिकालदर्शी)।

फिर हिन्दू धर्मग्रन्थों के अन्य भागों में यह भी लिखा है कि सम्पूर्ण वेद (जो वेद हिन्दुओं की बाइबिल है) एक वृक्ष के समान हैं, जो ओम् के बीज से उत्पन्न हुए हैं। यह ॐ बीज कहलाता है जिससे वेदों का वृक्ष उत्पन्न हुआ। अब हमें इस विचार को उक्त पहले विचार से मिलाना चाहिए कि वेद उन लोगों से निकले और प्रकट हुए हैं जिन्होंने उन्हें लिखा नहीं, बल्कि जो उनसे स्वतः ऐसे प्रकट हो गये जैसे दीपक से प्रकाश फैलता है, या पुष्प से सुगन्ध निकलती है। उक्त दोनों विचार इस प्रकार से मेल खाते हैं कि जो मनुष्य उच्च ईश्वर प्रेरणा (higher inspiration) प्राप्त करना चाहते थे, जो उस दिव्य दृष्टि को पाना चाहते थे, जो अहंकृत, व्यक्तिगत, तुच्छ, परिच्छिन्न, एकदेशीय आत्मभावना से ऊपर उठना चाहते थे, वे ओम् (प्रणव) उच्चारण से ईश्वर-प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त करते थे।

अब ॐ का उच्चारण केवल गले का ही उच्चारण नहीं है, यह कुछ और भी है। जब कि ओंठ और गला इस प्रणव को शरीर द्वारा उच्चारण करते हैं, तो मन इसे बुद्धि और चित्त से उच्चारण करता है, तभी चित्तवृत्तियाँ और भावनायें इसे उच्च भावों की भाषा में उतारती हैं। इस प्रकार इस पवित्र अक्षर ॐ का त्रिविधि उच्चारण तुम्हें उस सर्वरूप परमात्मा के प्रकाश से मिलाप और एकत्र कराता है। यह वह विधि है जो उन लोगों ने वर्ती थी। इससे राम को तुम्हारे समक्ष ॐ मन्त्र का अर्थ और अभिप्राय समझाने की जरूरत प्रतीत होती है। इस विषय को राम शायद किसी दूसरे दिन लेगा, परन्तु तुम्हारे समक्ष राम इस ओम् मन्त्र के अर्थ और अभिप्राय रख देने से पहले यह अवश्य बतला देना चाहता है कि ईश्वर-प्रेरणा या ईश्वरज्ञान इस स्वल्प मन्त्र की ध्वनियों के आश्रित क्योंकर है।

क्या ईश्वर शब्दों का आदर करनेवाला है? यह प्रश्न है जो प्रत्येक व्यक्ति के मन में उठता है। राम तुम्हें यह दर्शायगा कि ओम्

पवित्रों से पवित्र सर्वरूप परमात्मा का असली और बहुत ही स्वाभाविक और प्राकृतिक नाम है। यह नाम किसी भाषा विशेष का नहीं है। यदि हिन्दुओं ने इसे ग्रहण कर लिया, तो इसका यह अर्थ नहीं कि यह संस्कृत भाषा का शब्द है। यह प्रकृति का नाम है, प्रकृति का शब्द है; यह प्रकृति का अक्षर है, प्रकृति का मन्त्र है। और कुछ लोग इस कारण से शायद इसे ग्रहण करना पसन्द नहीं करते कि यह संस्कृत से या हिन्दुओं से आया है। तुम जानते हो कि कट्टरता अथवा धर्मपरायणता का अर्थ आजकल मेरी मति धर्म और तुम्हारी मति विधर्म माना जाता है। इसलिए हर एक मत के कट्टर लोग प्रत्येक वस्तु को, जो उनके अपने नाम से नहीं आती, स्वीकार करने को तैयार नहीं होते हैं। पर तुम्हें इसे, ऐसा समझकर कि यह मंत्र हिन्दुओं से आया है, अस्वीकार करने की ज़रूरत नहीं। संस्कृत भाषा में यह ॐ शब्द संस्कृत व्याकरण के गुण या विभक्ति या अन्य रूपों या नियमों के अधीन नहीं है, जैसे कि संस्कृत के दूसरे शब्द होते हैं। इसलिए यह संस्कृत शब्द नहीं है। यह तो स्वयं अकृतक (स्वतः प्रकट हुआ) और प्रकृति का शब्द है। हिन्दुओं ने इसे ले लिया, अर्थात् साधन रूप से ग्रहण कर लिया। प्रत्येक बच्चा इस ध्वनि के साथ उत्पन्न होता है। वह कौन सी पहली ध्वनि है जिसे बच्चा उत्पन्न होते ही बोल उठता है? वह या तो अम् या उम् या ओम् या मम जैसी ध्वनि होती है। अब आह, ओह, उह्म (अर्थात् अ, ऊ, म्) इन तीन मूल ध्वनियों के मेल से ओम् बनता है। फरासासी भाषा में जब ओह और आह आवाजें इकट्ठी मिलती हैं, तो वे 'ओह' आवाज़ में संयुक्त हो जाती हैं, इसी प्रकार ये ध्वनियाँ जब संस्कृत में इकट्ठी मिलती हैं, तो वे वैसे ही ओम् में संयुक्त हो जाती हैं। इसलिए ध्वनि आह, ओह, अम् के मेल से यह ॐ अक्षर बनता है। हरेक राष्ट्र का हरेक बालक इन ध्वनियों के साथ उत्पन्न होता है जिन ध्वनियों को वह दूसरे लोक से अपने साथ

जाता है। फिर हम यह भी देखते हैं कि जब मनुष्य रोगी पड़ता है, तो वह कौन सी ध्वनि है जिसके उच्चारण से उसे कुछ विश्रान्ति मिलती है? वह ऊँह, ऊँह, ओह्म अथवा ओम् की ध्वनि है, और उससे वह आराम पाता है। एक बीमार मनुष्य, एक असह्य वेदना से पीड़ित मनुष्य, इसी ॐ ध्वनि में अपना रूप (आराम) पाता है। इस संसार में जहाँ कहीं बच्चे खुश होते हैं, अत्यन्त प्रसन्न होते दिखाई देते हैं, उनकी प्रसन्नता, उनका हर्षोन्माद ओम् ध्वनि के उच्चारण में स्पष्ट होता है। सर्वत्र एक यही ध्वनि है। यह वही ध्वनि है जो आपके मन की उस दशा को द्योतक है जिसमें आप इस तुच्छ, स्थानीय, अहंकारयुक्त, व्यक्तिगत, क्षुद्र और परिच्छिन्न भावना से परे या ऊपर उठे होते हैं। जब कभी तुम उस एकदेशीय भावना से उठते हो, जिस भावनानुसार तुम अपने आपको ५ या ६ फुट की छोटी सी सीमा में बद्ध या परिच्छिन्न मानते हो, जिस सीमा के उत्तर में सिर है, जो कभी कभी टोपी या पगड़ी से ढका होता है, और जिसके दक्षिण में एक जोडी जूते होते हैं; जब तुम इस प्रकार की तुच्छ अहंकारयुक्त क्षुद्र भावना से ऊपर उठते हो, तब ॐ मंत्र की स्वाभाविक अर्थात् असली ध्वनि तुम्हारे द्वारा प्रकट होती है। फिर हम यह भी देखते है कि संसार भर की सारी भाषाओं में ओम् एक प्रधान स्थान पाये हुए है। पहले सर्वज्ञ भाव ओम् के साथ आरम्भ होता है (फिर अनुनासिक स्वर) और ऐसे ही फिर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान भाव। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक यह ईश्वर के अत्यन्त मधुर और सर्वोपरि श्रेष्ठ नाम हैं और ये सब ईश्वर के असली नाम ॐ के साथ आरम्भ होते है। अपनी प्रार्थनाओं में जब तुम उस स्थल पर पहुँचते हो जहाँ सम्पूर्ण वाणी रुक जाती है, तब तुम एमिन शब्द उच्चारण करते हो; अरबी भाषा में हम उसे आमिन कहते हैं और फारसी में आमीन, इसी प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में भी यह एमिन या आमिन शब्द है। हम सभ्य लोगों

की मुख्य मुख्य भाषाओं की प्रार्थनाओं में इसे देखते हैं। जब वे उस स्थल पर आते हैं जहाँ वाणी रुक जाती है, जहां केवल मौन रहता है, जब तुम उस पवित्र मौन अवस्था में प्रविष्ट होते हो, जिसे हिन्दुओं ने—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"

इस वाक्य से प्रकट किया है, जिसका अर्थ यह है कि "जहाँ से सम्पूर्ण वाणी मन के सहित ऐसे वापस लौट आती है जैसे गेंद दीवाल से टक्कर खाकर वापस लौट आती है"। जब तुम उस अवस्था में पहुँचते हो, तो यह ॐ शब्द प्रकट होता है, जो तुमको समग्र संसार से तदात्म करके उससे परिचय दिलाता है। एमन या आमिन मात्र ओम् के अपभ्रंश रूप है। इसलिए ओम् ईश्वर का सब से यथार्थ असली नाम है, पवित्रों में पवित्र रूप परमात्मा का सर्वोपरि शुद्ध नाम है।

इससे बढ़कर, क्या तुमने कभी उस ध्वनि पर विचार किया है, जो तुम्हारे श्वास, तुम्हारे प्राणायाम के साथ मिली रहती है? हम इसे अभी देखेंगे। यह ध्वनि 'सोहं', 'सोहं' है। अकेले में ऊँचे ऊँचे श्वास लो, तुम देखोगे कि तुम्हारे श्वास की आवाज़ 'सोहं' जैसी है। संस्कृत भाषा में 'सोहं' का अर्थ होता है। और कृपया इसे स्मरण रखिये। यदि संस्कृत भाषा में इस 'सोहं' शब्द का अर्थ है, तो अंग्रेज़ी भाषा को उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। शब्द विज्ञान से सिद्ध होता है कि इंग्लिश, फ्रेंच, स्केंडिडयन, रशियन, ग्रीक और परशियन आदि भाषायें—सब की सब संस्कृत भाषा की पुत्रियाँ हैं। सो ऐ पुण्यात्माओ! संस्कृत तुम्हारी अंग्रेजी भाषा की माता है, इसलिए यदि वह माता का अर्थ है, तो पुत्रियों को उसे क्यों न लेना चाहिए? अब संस्कृत भाषा में सोहं का अर्थ क्या है? 'सो' का अर्थ वह और 'अहं' का अर्थ है मैं हूँ, अर्थात् 'मैं वह हूँ'। उस भाव से मिली हुई साँस लेने की एक विशेष विधि है। तुम्हारे श्वास की आवाज 'सोहं' में दो व्यंजन हैं, और शेष स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं। पहले व्यंजन को हटा दो, और 'ह' को बीच

में से निकाल दो, तो यह ओम् हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य की श्वास या इस संसार का लौकिक जीवन दो आवाजों का बना हुआ है जो व्यंजन हैं, और जो दूसरों पर अवलम्बित हैं। इन अवलम्बित या व्यंजन आवाजों को दूर कर दो, तो आत्मा या तुम्हारे श्वास का जो स्वतंत्र तत्त्व है, ओम् रहता है। इस प्रकार तुम्हारे श्वास का जीवन या प्राण ओम् शेष बचता है। जो ध्वनि तुम्हारे श्वास की जान है, वह ओम् ठहरती है। ओम् ईश्वर परमात्मा के लिए जो समस्त जीवों या आत्माओं को प्रकाशता है, तथा अपने भीतर के स्वर्ग के लिए बहुत ही स्वाभाविक नाम है। एक शब्द में, जीवात्माओं की आत्मा, जीवन का जीवन, प्राणों का प्राण ओम् है।

ओम् के उच्चारण से जो उच्चतर स्फुरण और उच्चतर अवस्था प्राप्त हो जाती है, उसके लिए राम कुछ वैज्ञानिक हेतु आगे स्पष्ट करता है।

तुम जानते हो, आवाजे (स्वर) दो प्रकार की होती है। तुम्हारी व्याकरण की पुस्तकें उनको स्पष्ट और अस्पष्ट अथवा सार्थक तथा निरर्थक कहती है। संस्कृत में हमारे यहाँ वह आवाज (स्वर), जो वर्णमाला के अक्षरों से उच्चारण की जा सकती है, सार्थक या स्पष्ट कहलाती है, और जो इससे इतर स्वर है, वह निरर्थक, अस्पष्ट ध्वनि माना जाता है। आवाजों के दो भेद हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। वर्णात्मक या सार्थक ध्वनियाँ उन विषयों से सम्बन्ध रखती है जिनका व्यवहार मस्तिष्क के ज्ञान से होता है। और ध्वन्यात्मक आवाजें या स्वर वे हैं जिनका व्यवहार आधुनिक काल के मनोविज्ञान विशारदों की भाषा में अन्तःकरण हृदय या भावों से होता है। हम देखते हैं कि वर्णात्मक या सार्थक आवाजें एक परिमित समाज के लिए कुछ अर्थ रख सकती है (सब के लिए नहीं)। यहाँ राम आपसे अंग्रेजी भाषा में बोल रहा है। जो इस अंग्रेजी भाषा को नहीं जानते हैं, उन

के लिए यह बातचीत एकदम निरर्थक होगी। इस लिए जब राम अंग्रेजी बोलता है, तब वही लोग राम को समझ सकते हैं जो उसी प्रकार की बनावटी रीति से शिक्षित हैं जिसमें किसी भाषा विशेष को सीखने वाले शिक्षित किये जाते हैं। उनसे इतर दूसरा नहीं समझ सकेगा। यहाँ यदि एक ऐसा मनुष्य राम के पास आता है, जो राम के साथ फारसी, रूसी या संस्कृत भाषा में बोलता है, तो तुम उसे नहीं समझ सकते। जो वह अंग्रेजी भाषा नहीं जानता है और चिल्लाने लग जाता है। अब उसके चिल्लाने या रोने से तुम उसे तत्काल समझ जाते हो कि वह किसी संकट में है, किसी विपद् में है। एक मनुष्य आता है जो तुमसे संस्कृत, फारसी या जापानी भाषा में कुछ कहता है, तुम उसे नहीं समझते। पर हँसने पर वह हँसने लगता है, और तुम उसे समझ जाते हो। पस, यह चिल्लाना और रोना-धोना या हँसना, क्या यह वर्णात्मक शब्द हैं, या ध्वन्यात्मक? इस स्वर ने अपना काम कर दिखाया (अर्थात् इसने अपना प्रभाव सीधा हमारे मन पर डाला)। शिशु तुमसे तुम्हारी भाषा में नहीं बोल सकता, परन्तु कहते है कि प्रेम की भाषा सर्वत्र समझी जाती है। एक बिल्ली आती है, और तुम उसे भगाना चाहते हो। तुम उसे फारसी, संस्कृत, अरबी, अंग्रेजी में बोलो, वह नहीं समझती है; परन्तु अपने हाथों से तुम ताली बजाओ, और वह तत्काल भाग जाती है। यह ध्वन्यात्मक शब्द है, वर्णात्मक नहीं, जिसने तत्काल काम कर दिखाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा सार्वभौमिक या विश्वव्यापी होती है, और वह ऐसी भाषा है जिसका उन साधनों या कारणों से सम्बन्ध है जो मस्तिष्क से कहीं अधिक गम्भीर होते हैं। १७ वीं और १६ वीं शताब्दियों के दार्शनिक मनुष्य के शासन-केन्द्र को मस्तिष्क के किसी भाग में स्थान देते चले आये हैं। परन्तु आज इन दार्शनिक लोगों की भूल पकड़ ली गई है, और एक बार पुनः दार्शनिक जगत् यह मानने लगा है कि वह (केन्द्र) हृदय के नाड़ीगुच्छक केन्द्र (gangleonic

centre) में स्थित है। वहीं मनुष्य का शासन-स्थान है। इसलिए हम कहते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा मस्तिष्क या बुद्धि से भी किसी बहुत गहरे स्थान से निकलती है। राम ने एक महिला को यह कहते सुना कि "तुम अपने गिरजाघरों में मुझे उपदेश नहीं दे सकते, परन्तु तुम वहाँ मेरे लिए भजन गा सकते हो।" यह तुम भी मानोगे कि गिरजाघरों में धर्मोपदेशों की अपेक्षा हम गीतों से अधिक आनन्द लेते हैं। यह क्यों? जब तुम उदास होते हो, और कोई व्यक्ति आकर बाजा बजाने लगाता है, तो स्वरों का ऐसा लय उत्पन्न होता है कि तुम तत्काल शान्तचित्त हो जाते हो। 'पूर्वी औरोरा' में राम का एक मित्र है। उसके कारखाने में जब मजदूर लोग किञ्चित् असम्बन्ध होते हैं, उनमें परस्पर प्रीति की कमी और विरोध. की उत्पत्ति हो जाती है, तो वह काम को फौरन् बन्द कर देता है, और किसी को बाजा बजाने की आज्ञा देता है। बस, एक आध घंटे में हरेक बात ठीक हो जाती है। तुम जानते हो कि राग लोगों पर कैसा जादू भरा असर करता है। कुछ फ्रांसीसियों को फ्रैंको-प्रशियन युद्ध में प्रेम विषयक गीत सुनाये गये, और सब के सब गृह-व्याकुल हो गये। और गैरहाजरी की छुट्टी के लिए प्रार्थनापत्र पर प्रार्थनापत्र अफसरों के पास आने लगे। सब के सब गृह-व्याकुल थे, किसी प्रकार युद्ध ही न कर सकते थे। तुम जानते हो कि युद्ध में गीत लोगों को कैसे उभारता है। तुमने ट्राय नगर के सम्बन्ध में सुना होगा—वह अपौलो (Apollo) के गीत से प्रकट हुआ था। उसके राग से नगर प्रकट हो आया था। तुम सब उन मोहनेवाली सुन्दरियों को जानते होगे जो समुद्र के एक द्वीप में रहती थीं, और जो यात्री समुद्र-यात्रा करते हुए उधर गुजरते थे, वे उनके गीत को सुनकर उस निर्दयी द्वीप की ओर खिंच जाते थे, यद्यपि वे भली भाँति जानते थे कि तीन दिन तक उन मोहिनी सुन्दरियों से भोग-विलास करने के पश्चात् वे काट कर खा लिये जायँगे। तथापि

वे उस राग के प्रभाव को न रोक सकते थे, गाने का प्रभाव ऐसा ही होता है।

यही हाल इस संसार के प्रलोभनों का है। लोग यह जानते हैं कि जब प्रलोभन उन पर प्रबल होते हैं, तो वे तीन दिन तक भोग विलास करते हैं और फिर स्वयं उनके द्वारा खा लिये जाते हैं। फिर भी वे उनके प्रभाव को रोक नहीं सकते, किसी प्रकार प्रलोभनों का सामना नहीं कर सकते। यह कहा जाता है कि जब ओरफियूस गाता था, तब नदी-नाले भी उसे सुनने को रुक जाते थे। एक ओर सिंह और दूसरी ओर गाय, एक ओर भेड और दूसरी ओर भेड़िया खड़े रहते, किन्तु उस स्वर-ताल में वे अपने आपको भूल जाते थे। तुम उस सेन्ट सीसिलिया (St. Cecilia) के विषय में जानते होगे कि जो स्वर्ग के दूत को नीचे पृथ्वी पर खींच ले आई थी। और तुमने उस गायक के सम्बन्ध में, भी सुना होगा जिसने सिकन्दर की दावत में सिकन्दर का ईश्वर से संयोग या अभेद करा दिया था। कवि ने क्या ही कहा है।

"He raised the mortal to the skies,
And she (St. Cecilia) brought an angel down"

सिकन्दर की दावत में गानेवाला (गवैया) तो मर्त्य को द्यौ लोक में ले गया, और वह सेंट सीसिलिया स्वर्ग के प्राणी (दूत) को स्वर्ग से नीचे पृथ्वी पर ले आई।

इसी कारण यह गवैया सेंट सीसिलिया से बहुत श्रेष्ठ था। राग या संगीत क्या है? वर्णात्मक या ध्वन्यात्मक? स्पष्ट रूप से ध्वन्यात्मक। वाह, इसका कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव होता है! विज्ञानशास्त्र सिद्ध कर सकता है कि खास-खास ध्वनियों का खास-खास प्रभाव क्यों पड़ता है। और विज्ञान यदि इसे न भी सिद्ध कर सके, तो भी यह तथ्य तो तथ्य ही है कि ध्वनि से अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है और वह आश्चर्यजनक परिणाम तात्कालिक होता है। उसका प्रभाव तुम्हारे मन में तथ्य रूप से बना रहता है।

इसलिए राम कहता है कि 'ओ३म्' का प्रभाव उसके उच्चारण से सम्बन्ध रखता है, और अनुभव ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि जीवात्मा को सर्वरूप परमात्मा के साथ अभेद कराने में इस ध्वनि (प्रणवोच्चारण) का अद्भुत प्रभाव पडता है। निःसन्देह इसका अद्भुत प्रभाव होता है। यदि विज्ञान-शास्त्र आज इसे सिद्ध नहीं कर सकता, तो शास्त्र को अभी और उन्नति करने दो, और कुछ समय पश्चात् वह इसे समझाने के योग्य हो जायगा। इस बीच में अर्थात् तब तक तो यह तथ्य तथ्य ही बना रहेगा। इसलिए युगों के इस अनुभव की नींव पर—राम का अभिप्राय निजी अनुभवों से है—राम तुम्हारे समक्ष वैदिक ज्ञान का यह भाण्डार खोलता है कि किस प्रकार हिन्दू लोग भीतर की, आध्यात्मिक ज्योति की, दिव्य-दृष्टि की उच्च अवस्था को प्राप्त हुए थे।



Peace like a river flows to me.

Peace like a river flows to me,
Peace as an ocean rolls in me,
Peace like the Ganges flow,
It flows from all my hair and toes.
O fetch me quick my wedding robes,
White robes of light, bright rays of gold,
Slip on, lo! once for all the veil to fling!
Flow, flow, O wreaths, flow fair and free,
Flow, wreaths of tears of joy, flow free.
What glorious aureole, wondrous ring
O nectar of life! O magic wine.
To fill my pores of body and mind!

Come fish, come dogs, come all who please,
Come powers of nature, bird and beast.
Drink deep my blood, my flesh do eat.
O come, partake of marriage feast.
I dance, I dance with glee,
In stars, in suns, in oceans free,
In moons and clouds, in winds I dance,
In will, emotions, mind I dance,
I sing, I sing, I am symphony.
I'm boundless ocean of Harmony,
The subject—which perceives,
The object—thing perceived.
As waves in me they double,
In me the world's a bubble,
Om ! Om !! Om !!!.

सभ्य संसार पर भारतवर्ष का अध्यात्म-ऋण

(जुलाई १६, सन् १६०४ में दिया हुआ व्याख्यान)

आज प्रातः कुछ विद्यार्थियों से बोलते समय एक वचन इस मुंह से निकल गया—"मुझे नितान्त स्मरण नहीं कि मैं कभी पैदा हुआ था। निःसन्देह मै कभी पैदा नहीं हुआ था, और संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो मुझे निश्चय करा सके कि मै कभी मर सकता हूँ।" भारतवर्ष में एक भारी सभा में व्याख्यान देते समय राम एक विषय पर बोला, जिससे राज-नीति की गंध आती थी। श्रोताओं में न्यायाधीश, वकील और बड़ी उच्च पदवीवाले सरकारी कर्मचारी भी थे। व्याख्यान हो चुकने के बाद वे राम के पास आकर यह कहते हुए प्रतिवाद करने लगे कि "स्वामी जी! भविष्य में ऐसा व्याख्यान कभी न दीजिये। क्योंकि इससे भय है कि आपका शरीर कारागृह में डाल दिया जाय या फाँसी पर लटका दिया जाय।" इस पर राम का यह उत्तर था—"प्रियवरो! राम जूडास इसकेरियट (Judas Iscariot) का काम नहीं कर सकता। राम सत्य के ईसामसीह को चाँदी के तीस टुकड़ों के पीछे नहीं बेच सकता। क्योंकि कोई व्यक्ति राम को यह निश्चय नहीं करा सकता कि इस संसार में ऐसी भी तेज तलवार है जो आत्मा को काट सके, या ऐसा तीक्ष्ण शस्त्र भी कोई है जो राम को घायल कर सके! अमर वस्तु, अविनाशी आत्मा, कभी न उत्पन्न होनेवाला, मारे जाने के अयोग्य, कल और आज सदैव एक समान रहनेवाला यह राम है, फिर राम कैसे उनकी बात मानता?"

अब जो वचन तुम यहाँ सुनोगे, संभव है, वैसे वचन सुनने की बहुधा तुम्हें आदत न हो, और शायद वे वचन तुम्हें विचित्र से जान पड़ें, किन्तु सत्य के ऋण के फलस्वरूप राम उनको स्पष्ट करने में विवश है।

भारतवर्ष के सम्बन्ध में अनेक कथायें और गाथायें इस देश में फैली हुई हैं। अभी उस दिन मिनन्यापोलिस (Minneapolis) में व्याख्यान दे चुकने के बाद एक महिला राम के पास आई और बोली—मिस्टर स्वामी! क्या भारत में महिलायें अभी तक अपने बच्चों को गंगा में मगर के आगे फेंक देती हैं? राम ने उस महिला को उत्तर में कहा, "भगवती! राम भी श्रीगंगाजी में फेंका गया था, परन्तु तुम्हारे रक्षित जोनह (Jonah) के सदृश राम तैर निकला।" यथार्थ में श्रीगंगाजी के निकास-स्थान (गंगोत्री) से गंगा के मुहाने तक राम पैदल चला है। तुम में से जिन्होंने राम के साथ पैदल चलने का आनन्द लिया है वे जानते हैं कि यह छोटा सा शरीर प्रतिदिन ४० मील चल सकता है। राम तुमसे कहता है कि गंगा के तट पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमते हुए राम ने उस पवित्र नदी को इतना स्वच्छ और शुद्ध, इतना तेज और वेगवती पाया कि विज्ञान के नाम तले उसमें कोई मगर या घड़ियाल ठहर ही नहीं सकता। मगरमच्छ या घड़ियाल तो रेतीली और गंदली नदियों में रहते हैं, और उस नदी (गंगा) में (विशेष करके पर्वतों में) तो कोई भी मगर उँगली से भी नहीं दर्शाया जा सकता। कहानी रचनेवालों के मधुर हृदयों को धन्यवाद! इस देश में भारतवर्ष के सम्बन्ध में ऐसे ही समाचार प्रचलित हैं।

उस दिन मुझे सियाटल, वाशिंगटन से एक पत्र मिला जो एक विचित्र मामले में फँसे हुए हिन्दू भाई के हाथ से लिखा गया था। एक रात वह प्रेत-वादियों के किसी सभा-भवन से घर लौटते समय एक गाड़ी में बैठ गया। उसी गाड़ी में एक लड़की भी बैठी थी। वे एक ही साथ बैठ गये। जब लड़की गाड़ी से उतरी, उसी समय वह भी गाड़ी से उतरा, क्योंकि वह उसी लड़की के पड़ोस में रहता था। एक घंटे के बाद एक पुलिसवाला आया और उस विद्यार्थी को गिरफ्तार कर लिया। दो घण्टे तक वह विद्यार्थी जेल में रहा। दूसरे दिन उस

का मुकदमा पेश हुआ। लड़की ने उसके विरुद्ध यह दावा दायर किया था कि वह विद्यार्थी मेरी ओर अपनी हृदयवेधिनी और काली-काली प्रेत-वादी आँखों से ताकता था, और मुझे ऐसा भान होता था कि मानो मैं संमोहित हुई जा रही हूँ, और मैं इतनी डर गई थी! हे ईश्वर! बिचारे भारतवासी अमेरीका आने से पूर्व अपनी आँखें कहाँ रख आया करें? इस देश के कुछ भागो में भारतवासियों के सम्बन्ध में ऐसे ऐसे भद्दे विचार प्रचलित हैं।

भारतवर्ष के उज्ज्वल पक्ष के सम्बन्ध में राम तुम्हारे समक्ष प्राचीन भारतवर्ष के अनन्त वैभव और धन के विषय में उदाहरण पर उदाहरण दे सकता है। यूरोप में ऐसे ऐसे समाचार प्रचलित थे कि "भारतवर्ष में घर बने हुए हैं स्वर्ण के और सड़कें चाँदी की।" भारत-वर्ष विषयक ऐसे ऐसे समाचारों ने यूरोप को भारत के वैभव और धन को पाने के लिए उत्सुक, उत्कंठित और व्याकुल बना दिया, और भारत-वर्ष के विजयार्थ यूरोप के बहुत से देशों के लोग आये। कुछ लोगों ने उत्तर-पश्चिम के मार्ग से वहाँ जाना चाहा और (उसी मार्ग से) भारत में आये। तुम्हारा कोलम्बस पहले, भारतवर्ष के लिए ही नया मार्ग ढूँढ़ निकाला था, जब कि वह अनायास इसी खोज में) इस सुहावने अमेरिका में आ गिरा। इस प्रकार एक समय भारतवर्ष में आकर्षण था, कम से कम वहाँ तक तो ज़रूर था जहाँ तक उसके धन का सम्बन्ध है। राम तुमको केवल फारसी और ग्रीक लेखकों के वृतान्तों का हवाला देता है जो उन्होने भारतवर्ष के मन्दिरों के सम्बन्ध में लिखे थे। एक मन्दिर में दस हजार नौकर नियुक्त थे, और छतों में हीरे और लाल लगे हुए थे। भारतवर्ष के धन सम्बन्धी वृत्तान्तों के सिद्ध करने में यदि तुम कुछ ऐतिहासिक प्रमाण चाहते हो, तो राम तुम्हें 'एडमंड बर्क' के वे व्याख्यान पढ़ने को कहेगा जो व्याख्यान उसने वारन हेस्टिंग और लार्ड क्लाइव के सम्बन्ध में दिये थे।

राम भारतवर्ष की बुद्धि विषयक सम्पत्ति के विषय में बहुत कुछ कह सकता है। भारतवर्ष में राम ने एक मनुष्य देखा जो स्मरण-शक्ति के बहुत ही आश्चर्यजनक काम करता था। उसे घेरकर आधे चक्कर में लगभग ५० या ६० मनुष्य एक कमरे में बैठ जाते थे। प्रत्येक मनुष्य से कहा जाता था कि वह चाहे जिस पुस्तक में से पाठ निकालकर अपने आगे रख ले। कुछ उद्धरण उन पुस्तकों से निकाले गये जो अंग्रेजी, अरबी, संस्कृत और ऐसी ही अन्य भाषाओं में लिखी हुई थीं। यह मनुष्य स्वयं अंधा था। प्रत्येक मनुष्य ने उसको अपने अपने उद्धरणों की पंक्तियों की संख्या बतला दी। तब बारी बारी प्रत्येक मनुष्य ने एक समय में एक एक पंक्ति उसे सुनाई। पहले मनुष्य ने, मान लीजिये, अपने बीस पंक्तियोंवाले उद्धरण की पहली पंक्ति सुनाई और दूसरे ने अपने तेरह पंक्तियोंवाले उद्धरण की पाँचवीं पंक्ति, तब दूसरी बारी में सब लोगों ने एक एक पंक्ति फिर सुनाई। इसी प्रकार बिना क्रम और अनियमित रीति से वे अपनी अपनी पंक्तियाँ उस अन्धे महात्मा को सुनाते रहे। जब तेरहवी बार में वह उस मनुष्य तक पहुँचा जिसने कहा था कि मेरे उद्धरण की १३ पंक्तियाँ हैं, तो उसने कहा—सुनिये, महाशय! तुम्हारे उद्धरण की पंक्तियाँ समाप्त हो गई। और मन ही मन में उन सब पंक्तियों को ठीक क्रम में बैठाकर उसके पूर्ण उद्धरण को बिना किसी गलती के आद्योपान्त दुहरा दिया। इसी प्रकार उसने सब मनुष्यों के उद्धरणों को पूर्ण करके दुहरा दिया।

अब राम तुमसे कुछ अन्तःकरण सम्बन्धी अनुसंधान के सम्बन्ध में कहता है। एक ऐसा स्वामी अमेरीका में आया था जो अपने आपको ५ मिनट तक अचेतनावस्था में डाल सकता था। परन्तु हिमालय में राम को बहुत से स्वामियों से भेंट हुई जो अपने आपको छः मास तक प्रत्यक्ष मृतक जैसी अवस्था में रख सकते हैं। छः मास तक की प्रत्यक्ष मृत्यु के बाद मृतोत्थापन का एक उदाहरण देखो। इनमें से एक

स्वामी सन्दूक में बन्द करके भूमि में गाड दिया गया, और छः मास के बाद खोदकर भूमि से निकाला गया और कुछ विशेष विधियों से जिन्हें उसने अपने साथियों को अपने शरीर पर वर्तने के लिए कहा था, वह पुनः जीवित हो गया। ऐ पुण्यात्माओ! ज़रा इस पर विचारो। एक मनुष्य तीन दिन की प्रत्यक्ष मृत्यु के बाद पुनः जीवित हुआ था। और इस कारण प्रायः समस्त यूरोप ने अपना नाम और विश्वास उस व्यक्ति के साथ जोड़ लिया। भारतवर्ष में मनुष्य छः मास की प्रत्यक्ष मृत्यु के बाद पुनः जीवित हो उठते हैं, परन्तु हम इस काम की उतनी ही क़दर करते हैं जितना उचित है। यह (पुनः जीवित हो उठना) कोई आध्यात्मिकता नहीं है, वरन् यह तो वास्तव में एक प्रकार का हठ-योग और अन्तःकरण संबन्धी एक वैज्ञानिक विधि है। यदि आधुनिक काल के डाक्टर लोग इस विधि को नहीं जानते, तो उन्हें अपने विज्ञान के अनुसधान में उन्नति करनी चाहिए। पर हम इस काम की उसकी योग्यता के अनुसार ही क़दर करते हैं।

इसी विषय के विधेयात्मक पक्ष को ग्रहण करने से पहले यहाँ राम कुछ शब्द इसके निषेधात्मक पक्ष में कहने के लिए विवश है। निषेधात्मक पक्ष यह है। उस दिन एक भद्र पुरुष आकर बोला:— "स्वामी! अपने शास्त्र और धर्म की चर्चा से हमें दिक न करो। क्या आपका धर्म प्राचीन और अप्रचलित नहीं है?" मानो सत्य भी कभी पुराना या अप्रचलित होता है! मानो सत्य भी परिवर्तनशील और अस्थिर है! राम ने उससे कहा:—"भाई! क्या तुम अपनी और अमेरिका की तथा आजकल के यूरोप की उन्नति का कारण जानते हो?" राम ऐसा उत्तर देने को बाध्य था, क्योंकि उसने कहा था कि "तुम्हारा धर्म अप्रचलित और पुराना है।" हमारा धर्म जीवित है, जीवन से भरा हुआ। हमारा धर्म विधेयात्मक पक्ष पर ज़ोर देता है, यद्यपि तुम्हारा मत निषेधात्मक पक्ष पर! वह—"तुम्हें यह नहीं करना चाहिए"—पर ज़ोर देता है।

राम ने कहा, ऐ पुण्यात्मा! आओ, आज हम अमेरिका के वैभव का पता लगावें और इस बात को भी देखें कि अमेरिका का क्या धर्म है? राम ने बताया कि तुम्हारा यानी अमेरिका का धर्म तो तुम्हारी गर्दन में एक तावीज़ के प्रभाव के समान लटका रहता है। एक लडका तावीज़ पहनता है। अपनी सफलताओं को तो वह उस तावीज के मंत्रों से जोड़ता है और असफलताओं का हेतु अपने प्रयत्नों की न्यूनता ठहराता है। इसी प्रकार ऐ पुण्यात्माओ! तुम्हारी विभूति, तुम्हारी गौरवशाली सभ्यता का असली कारण कुछ और है। वह ईसाई मत या जिसे राम गिर्जापन कहता है, नहीं है। हमें ऐतिहासिक रूप से इस बात की जाँच करनी चाहिए। इतिहास पढ़ने से हम देखते हैं कि यूरोप में इस नासमात्र के ईसाईपन या गिर्जापन के प्रचलित होने से पूर्व ऐसे राष्ट्र भी मौजूद थे जो अधिक नहीं तो कम से कम उतने ही दर्जे तक समृद्धशाली और सभ्य ज़रूर थे, जितना आजकल का यूरोप और अमेरिका है। मिस्र की अपनी सभ्यता थी, और चीन की अपनी, वरन् कुछ अंशों में तो यूरोप की कला और शिल्प-विद्या प्राचीन मिस्र और चीन की शिल्पविद्या के बराबर अभी तक नहीं पहुँच सकी है; भारतवर्ष का तो कहना ही क्या? फारस, यूनान और रोम भी तब अपनी अपनी सभ्यता रखते थे। ये सब देश और राष्ट्र सभ्य थे, और मूर्तिपूजक भी थे। यदि सभ्यता और भौतिक वैभव नित्य ईसाई मत के साथ रहती होती, तब कृपया राम को बताइये कि जब ईसाई मत उत्पन्न ही नहीं हुआ था, तब भी ये देश सभ्य और विभूतिवान् कैसे थे? फिर, हम यह भी देखते हैं कि जो रोम एक समय संसार भर में सबसे श्रेष्ठ और सर्वोत्तम देश था, और जो सर्वोपरि वैभव-सम्पन्न राष्ट्र था, उस रोम का अधःपतन क्योंकर हो गया। रोम साम्राज्य का अधःपतन क्योंकर हुआ? क्या इसका कारण ईसाई मत का आगमन और प्रचार नहीं था? इस विषय पर लेखक गिबन को पढ़िये, इस विषय पर किसी प्रमाणभूत ऐतिहासिक ग्रन्थ को पढ़िये। ईसाई मत के प्रचार से पूर्व यूनान देश बहुत वैभव-सम्पन्न और सुखी

था। आजकल के ईसाई ग्रीक क्या उन उत्तम, पुराने काल के मूर्तिपूजक यूनानियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं ? फिर हम कहते हैं कि "आओ और इतिहास पढ़ो।" इन सब तथ्यों और वृत्तान्तों के होते हुए किसी को भी अधिकार नहीं है कि वह अमेरिका तथा यूरोप की विभूति का कारण ईसाईपन या गिर्जापन को ठहराये। क्योंकि यूरोप में ईसाई मत फैलने के बाद एक हज़ार वर्ष तक ऐसा गहरा अंधकार छाया रहा, अर्थात् योरुप घोर अज्ञान भरे युगों के गहरे अन्धकार तले एक हज़ार वर्ष तक सड़ता रहा, वह ऐसे अकथनीय अन्धकार और इतने घोर अन्धकार और अन्धविश्वास और अज्ञान के युगों में था जैसे शायद ही संसार में कभी छाया हो। यूरोप में ईसाई मत के प्रचार का उस समय यही परिणाम हुआ।

कुछ लोगों का कहना है कि "देखो, ईसाई मत ने क्या क्या नहीं किया ? ईसाई मत ही संसार में सभ्यता का सबसे बड़ा स्तम्भ है।" क्या सभ्यता का यही अंग है कि उससे काफरों को सज़ा देने की कचहरियाँ, जादूगरनियों को जलाने, और वैज्ञानिक विचारवानों को पीड़ा देने की भयंकर रीतियों को जारी रखा जाय। जहाँ कहीं विज्ञान ने उन्नति करनी चाही, वहीं ईसाई मत उसका गला घोंट कर उसे मार डालने को तैयार हुआ। 'बरनो' जलाकर मार डाला गया, क्योंकि उसके विचार वैज्ञानिक थे। तुम जानते हो कि ईसाई मत ने 'बेन' 'जोह्नसन' और 'कारलायल' के साथ कैसा दुर्व्यवहार किया था। अमेरिका और यूरोप को विभूति दिलाने में किस किस ने कैसा भाग लिया, उन असली कारणों पर आज आओ, हम विचार करें।

पुण्यात्माओ ! वह धर्म-गद्दियों द्वारा प्रचारित नरकाग्नि नहीं है जिसने तुम्हें उन्नत किया है। यह अग्नि नहीं, वरन् वह अग्नि है कि जो भाप के इञ्जन, बिजली के यन्त्रालयों से प्रकट होती है। ये जहाज़ और रेल के आविष्कार हैं तुम्हारी विभूति और भौतिक उन्नति जिनकी ऋणी

है। इंगलैंड का डाक्टर जोह्नसन कहता है—"यदि एक लड़का तुमसे कहे कि उसने इस खिड़की से झाँका है जब कि झाँका उसने दूसरी खिड़की से हो, तो तुम उसकी ताडना करो।" इसी तरह राम तुमसे कहता है कि जब तुम एक वस्तु को किसी फल का कारण बताते हो जब कि कारण वास्तव में उसका कोई दूसरी वस्तु हो, तब तुम किस दण्ड के अधिकारी हो? इस प्रकार तुम्हारी भौतिक (सांसारिक) उन्नति का असली कारण वही अवयव हैं जो राम ने ऊपर वर्णन किये हैं, अर्थात् वे वैज्ञानिक आविष्कार और वैज्ञानिक अनुसंधान हैं। इन खोजों और शोधों में से एक को भी तो गिरजे के किसी पादरी, डाक्टर या मिनिस्टर ने नहीं किया है। क्या जेम्स वाट [James Watt,], जार्ज स्टीफनसन [Georgo Stephenson,], बेन्जेमिन फ्रैंकलिन [Benjamin Franklin], थौमस ऐडिसन [Thomas Edison] या इन मनुष्यों में से कोई भी रेवरेण्ड डाक्टर, पादडी या गिरजा का मिनिस्टर था? यदि इन मनुष्यों में से एक भी बाइबिल का प्रचारक होता, तो हम कह सकते थे कि तुम्हारी समस्त भौतिक उन्नति, तुम्हारी सारी सांसारिक विभूति का मूल कारण बाइबिल (इन्जील) है। हां, हम देखते हैं कि यदि कोई आविष्कार किसी आचार्य द्वारा कभी हुआ है, तो वह गनपौडर बारूद ही का आविष्कार है।

तुम देख सकते हो कि तुम्हारी विभूति का कारण ईसाई मत या ईसाईयों के नियम और आदेश नहीं हैं। ये कारण नही हैं। जैसे अमेरिका और यूरोप की भौतिक विभूति का कारण अमेरिका और यूरोप का तुम्हारा मुबारक धर्म नहीं है, वैसे ही भारतवर्ष का शारीरिक या भौतिक अधःपतन हिन्दू धर्म नहीं है। राम यह मानता है कि तुम्हारी या किसी और राष्ट्र की विभूति का असली कारण सच्ची आध्यात्मिकता है, और सच्चा अध्यात्म (रूहानियत) को राम सदा नामरूपों, नियमों, आदेशों, मतों, या जिस वेष में वह प्रकट हुई हो, उससे पृथक्

मानता है। इसी से राम कहता है कि अमेरिका के वैभव का असली कारण सच्चा और वास्तविक अध्यात्म है, जिस अध्यात्म की उत्पत्ति और प्रचार, धर्मगद्दियों के उपदेश और उन उपदेशों से वृद्धि को पाये हुए रीति रिवाजों के होते हुए भी बराबर बढ़ता जाता है। इस समस्त विधि-निषेध ने "Thou shalts," and Thou shaltnots" तुम्हारी उन्नति, तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता नहीं की, वरन् बाधा ही डाली है। कैंट (Kant) इन्हें नियत आदेश (Categorical imperatives) मानता है, अर्थात् ये निर्देश मध्यम पुरुष की दशा में ही दिये जा सकते हैं। ऐसी समस्त आज्ञायें या निर्देश तुम्हारी स्वतंत्रता को परिच्छिन्न करते हैं, तुम्हारी स्वतन्त्रता हर लेते हैं।

अब देखो, यह सच्ची आध्यात्मिकता कहाँ से उत्पन्न हुई? संसार के इतिहास में कहाँ से सच्चा अध्यात्म उत्पन्न हुआ? यही बात राम तुम्हें बतलायगा। सच्चा अध्यात्म वही है जिसे हम वेदान्त कहते हैं। इस संसार के सारे मत (धर्म) एक व्यक्ति विशेष पर निर्धारित हैं। ईसाई मत ईसा के नाम पर अवलम्बित है। कोनफयोशियनिज़्म (Confucianism) कनफियोशियस (Confucius) के नाम पर, बौद्ध धर्म (Buddhism) गौतम बुद्ध के नाम पर, ज़ुरास्टरीयनिज़्म (Zoroastrianism) ज़ुरास्टर (Zoroaster) के नाम पर और मुसलमानी मत (Mohammedanism) मुहम्मद (Mohammed) के नाम पर अवलम्बित है। वेदान्त शब्द का अर्थ है अन्तिम ज्ञान, आत्मा का ज्ञान। और वह मनुष्य से यह चाहता है कि मनुष्य इसे उसी वृत्ति से ग्रहण करें जिससे वे रसायनशास्त्र के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। रसायन-शास्त्र के ग्रन्थ को तुम लेवोयज़ियर, बोयल, रेनौल्डस डेवी, (Lavoisier, Boyle, Reynolds, Davy) प्रभृति रसायन-वेत्ताओं के प्रमाणों से नहीं मान लेते। तुम रसायन-शास्त्र के ग्रन्थ को साथ में लेकर उसमें वर्णित प्रत्येक वस्तु का स्वयं विश्लेषण

करते हो। राम स्वयं अपने अनुभवों के प्रमाण पर, न कि दूसरों के प्रमाण पर, यह विश्वास करता है कि पानी हाइड्रोजन और औक्सीजन (Hydrogen add Oxygen) का मिश्रण है। पानी का विद्युद्विकार करने से हम यह स्पष्ट देख सकते हैं। इसी तरह जो मत या धर्म किसी दूसरे के प्रमाण पर अवलम्बित है, वह मत या धर्म कैसे ठीक कहा जाय! सत्य केवल वही है, जो तुम्हारे अपने प्रमाण पर निर्धारित है। इस विचार से राम तुमसे अध्ययन करने, मनन करने और अपने भीतर निदिध्यासन करने और तद्विषयक ग्रन्थों के पढ़ने की सिफारिश करता है। इसी भाव से राम चाहता है कि तुम वेदान्त शब्द के निकट आओ। राम का यह मतलब नहीं कि तुम अपने विश्वास को वेदान्त के साथ जोड दो। राम किसी को परधर्मावलम्बी नहीं बनाना चाहता। परन्तु इस शब्द के अर्थ स्पष्ट करके राम यह कहेगा कि यह वेदान्त, सच्चा अध्यात्म तो संसार के सर्व शिरोमणि उस महा प्रतापी हिमालय से बहता रहा है। जैसे बडी बडी विशाल और सुन्दर नदियाँ उन शिखरों से बहती हैं, वैसे ही सच्चा अध्यात्म भी भारतवर्ष से निसृत हुआ है। तुम्हारे यूरोपनिवासी पूर्वीय भाषावेत्ता कहते हैं कि भारतवर्ष में इन विषयों की पुस्तकें ईसामसीह से लगभग चार हज़ार वर्ष पहले लिखी गई थीं। ये लोग इन पुस्तकों का मूल स्रोत ढूँढ़ने के यत्न में इस मिथ्या विश्वास के भारी बोझ के तले काम करते हैं कि "संसार ईसामसीह से केवल चार हज़ार वर्ष पहले रचा गया था।" परन्तु राम, वेदों के विद्यार्थी की हैसियत से तुम्हें इस बात के आन्तरिक प्रमाण दे सकता है कि इन महाशयों के ये कथन गलत हैं। एक विश्वविद्यालय में राम उच्च गणित-विद्या का प्रधानाध्यापक रहा है। राम गति-विद्या (Dynamics), बीज-जलस्थिति-विद्या (Analytic) hydrostatics), ज्योतिष-शास्त्र (Astronomy), त्रिकोणमिति Trigonometry) पर व्याख्यान देता रहा है, और वेदाध्ययन द्वारा

उन दिनों आकाश में तारों और नक्षत्रों के स्थानों के हवाले भी पाता रहा है। उन दिनों में ओरायन और अन्य नक्षत्रों के स्थानों के जो निशान थे, वे वेदों में दिये हुए हैं, और फिर गाणितिक गणनाओं (Mathematical Calculations) से वैज्ञानिक और गाणितिक रीति से राम इस बात का आन्तरिक प्रमाण दे सकता है कि ये वेद, कम से कम उनमें से कुछ अंश तो ईसामसीह से आठ हजार वर्ष पहले के लिखे हुए हैं। हम क्या उस प्रमाण को मानेंगे जो विलायती भूमिका में अटकलों द्वारा उठाया गया है, या उस प्रमाण को मानेंगे जो गाणितिक सिद्धान्त और तारागण के अटल अक्षरों द्वारा साक्षात् ईश्वर से प्राप्त हुआ है? यह एक बड़ा विस्तृत विषय है, परन्तु राम इस अल्प समय में तुम्हारे समक्ष केवल मुख्य मुख्य उदाहरण रख सकता है, जो इस विस्तीर्ण कल्पना में कुछ सुस्पष्ट संकेत रूप हैं।

क्या आप में से किसी ने प्राचीन ग्रीक लोगों द्वारा लिखित भारतवर्ष का इतिहास पढ़ा है? ईसामसीह से लगभग चार सौ वर्ष पहले, ग्रीक लोग भारतवर्ष में आने लगे थे। इतिहास बतलाता है कि ये ग्रीक लोग अपनी यात्रा का वृत्तान्त छोड़ गये हैं। राम ने उनमें से कुछ वर्णन पढ़े हैं। उन वृत्तान्तों में आप पायेंगे कि उन दिनों भारतवर्ष के लोग आदर्श पुरुष कहलाते थे। ग्रीक लोगों का कहना है कि हिन्दू कभी नहीं झूठ बोलते थे। स्त्रियाँ पुरुषों के साथ खुल्लम खुल्ला बिना परदा मिला-जुला करती थीं। वे बराबरी के दर्जे से उनके साथ रहती थीं। और उनका कहना है कि जंगलों और पर्वतों में उन दिनों सारे देश भर में बड़े बड़े अद्भुत विश्वविद्यालय वर्तमान थे। वे उज्ज्वल शब्दों में भारतवर्ष की भौतिक सम्पत्ति का भी वर्णन करते हैं। बेईमानी और अशुद्धता जिसे कहते हैं, उसका वहाँ नितान्त अभाव था। लोगों के दर्शन-शास्त्र के विषय में भी कुछ वर्णन किया है। उस पर तो ग्रीक लोग मोहित थे। आजकल भी प्राचीन भारत के बड़े बड़े ग्रन्थों

में से कुछ ऐसी पुस्तकें है जो स्त्रियों द्वारा लिखी गई थी। भारतवर्ष की एक सबसे महान् धर्मपरिषद् में, जहाँ संसार भर के सबसे महत्तम दर्शनाचार्य (जगद्गुरु शंकराचार्य) ने भाषण दिया था, एक भारतीय महिला सभापति हुई थी। कुछ सब से अधिक महत्वपूर्ण, और अत्यन्त अद्भुत मंत्र भारतवर्ष की स्त्रियों के पवित्र हृदयों से प्रकट हुए थे। राम वाल्ट ह्विटमेन (Walt Whitman) के इस कथन से सहमत है कि "सच्चाई पहले स्त्रियों के अन्दर आती है।"

भारतवर्ष की समस्त संस्थाओं का अधःपतन क्योंकर हुआ? भारत में मूर्तिपूजा कैसे आई? भारतवर्ष में मूर्तिपूजा उस देश की उपज (स्वदेशोद्भव) नहीं है। आज ईसाई लोग तुम्हें बताते है कि भारत के लोग मूर्तिपूजक हैं। परन्तु भारतवर्ष के सुविस्तीर्ण वैदिक ग्रन्थ, काव्य, व्याकरण, गणित, शिल्पविद्या और गानविद्या के लेखों में मूर्तिपूजा का जरा सा भी हवाला कहीं नहीं मिलता। तब यह मूर्तिपूजा आई कहाँ से? भारतवर्ष के धर्म का यह कोई अंग नही है। भारतवर्ष में यह मूर्तिपूजा ईसाई लोगों द्वारा प्रचारित हुई। लोगों ने इतिहास के इस पृष्ट को अभी तक पढ़ा नहीं है। परन्तु राम की यह खोज छपे हुए लेख के रूप में प्रकाशित होगी। राम इसको बाह्याभ्यन्तर प्रमाणों से सिद्ध करता है कि ईसामसीह के बाद चौथी और पाँचवी शताब्दी में कुछ रोमन केथोलक ईसाई भारतवर्ष में गये, और ये ईसाई आजकल भी भारतवर्ष में मौजूद है। इनका नाम सेंट थौमस ईसाई (St Thomas Christians) है और ये भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में रहते है। इन्हीं ईसाइयों ने मूर्तिपूजा वहाँ जारी की। फिर आन्तरिक प्रमाणों से भी राम सिद्ध करता है कि मूर्तिपूजा के सबसे बड़े प्रशंसक (मण्डन करने वाले) रामानुज के गुरु भी सेंट थामस ईसाइयों में से थे। सब से पहली मूर्ति जिसके सामने इन लोगों ने प्रणाम किया, उसे राम जानता है। उस मूर्ति में हम देखते हैं कि उसकी मुखाकृति भारतीय

नहीं थी। इस प्रकार मेरे प्रियात्माओ! स्पष्ट होता है कि मूर्तिपूजा का प्रसार (भारतवर्ष में) वहाँ से हुआ जिसे तुम ईसाई मत कहते हो*। तुम्हीं (ईसाई) लोग इसे वहाँ ले गये। और आज पादरी लोग भारतवर्ष में मूर्तिपूजा खण्डन करने जाते हैं। एक ओर तो इस (मूर्तिपूजा) का वे खंडन करते हैं और दूसरी ओर वही उन मूर्तियों को बना बना कर बेचते और धनोपार्जन करते हैं। शायद इसी उपाय से तुम उन लोगों को अपने मत में लाना चाहते हो। परन्तु क्या ये मूर्तियाँ, जिनको तुम बना बनाकर उन लोगों के हाथ बेचते हो, इन्जील की शिक्षा से अधिक प्रभावशाली नहीं हैं? यह तुम्हें स्वयं निर्णय करना है।

फिर भी बहुत से लोग उस देश (भारतवर्ष) की स्त्रियों की परतंत्रता के संबंध में, उस देश की परदा प्रथा के विषय में, अनेक किम्बदन्तियाँ कहते सुनते हैं। उसके प्रारम्भ के सम्बन्ध में भी एक दो शब्द कहने आवश्यक हैं। मुसलमान, जिन्होंने एक समय भारत पर शासन किया, बहुत ही दुराचारी थे। जब कभी वे अविवाहित हिन्दू कन्या को देखते, तो उसकी इज्जत लेने की चेष्टा करते। इस प्रकार स्त्रियों पर पाशविक अत्याचार होते थे। हिन्दू इस दुख से बचना चाहते थे और इसलिए उन्होंने यह प्रथा प्रचलित कर दी कि कन्या का विवाह तरुण अवस्था (यौवन काल) से पूर्व ही किया जाय, और इसके अतिरिक्त और किसी भी अवस्था में स्त्री को विवाह करने की आज्ञा न दी जाय। कन्या काल में ही लड़कियों का विवाह होना चाहिए। फिर उस समय स्त्रियाँ बाजार में मुँह खोले (बिना परदे के) घूम फिर नहीं सकती थीं, क्योंकि मुसलमान विजेता उनका मुख देख लेने पर उनकी इज्जत ले डालते थे। इस प्रकार परदा ओढ़ने

---

* जैसा स्वामी राम ने अपने व्याख्यान मे बोला वैसा यहाँ दे दिया गया है, पर इस से किसी पर कोई आक्षेप न समझा जाय। यह ऐतिहासिक जाँच पड़ताल है, जो इतिहास वेत्ता हैं वे ही इस पर अपना मत दे सकते हैं। (मंत्री)

की प्रथा चल पड़ी, जो प्रथा समस्त मुसलमान शासित देशों में प्रचलित है। हिन्दू-शासन काल में यह प्रथा वहाँ कभी न थी।

ऐ मेरे प्रियात्माओ! हिन्दू भी उसी अस्थि, मांस और रक्त के बने हैं जिसके तुम बने हुए हो। उनकी भाषा तुम्हारी भाषा की जननी है। यदि मेरा रंग काला है, तो उसका अर्थ केवल यही है कि मेरा चर्म पकाया हुआ है; परन्तु मेरे शरीर के वे अंग जो ढके हुए हैं उतने ही लाल हैं जितने तुम्हारे। उनका मुख पूर्वीय है, परन्तु वे तुम्हारे साथ अभेद हैं, तुम्हारे ही मांस और रक्त हैं।

यूरोपीय संसार अपनी आध्यात्मिकता और सभ्यता के लिए अपने को यूनान का ऋणी मानता है। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य इसे अस्वीकार करने का प्रयत्न न करेगा। परन्तु प्रियवरो! यूनानी लोगों के सम्बन्ध में क्या? यूनानी लोगों के दर्शन-शास्त्र के सम्बन्ध में क्या कहते हो? क्या तुमने कभी प्लेटो, सुकरात और पाइथेगोरस (Plato, Socrates, and Pythagoras) के ग्रन्थों को भारतवर्ष के दर्शन-शास्त्रों के साथ साथ मिलाकर पढ़ा है? यदि तुमने पढ़ा है, तो तुम कभी अस्वीकार नहीं कर सकते कि आत्मा की नित्यता और पुनर्जन्म की कल्पनायें, ये सब की सब हिन्दू दर्शन-शास्त्र की सन्तान हैं। हाँ, उनमें इतना अन्तर अवश्य है कि यूनानियों ने अपनी समूची सभ्यता हिन्दुओं से प्राप्त नहीं की। हम आज भी देखते हैं कि अरिस्टोटिल का तर्कशास्त्र हिन्दुओं के तर्कशास्त्र की अपेक्षा बहुत ही हीन है। यूनानियों के न्याय-शास्त्र की शैली का यदि हिन्दुओं के न्याय-शास्त्र की शैली के साथ तुलना की जाय तो तुम देखोगे कि अरिस्टोटिल का दर्शन-शास्त्र दोष-पूर्ण है। हिन्दुओं के ग्रन्थों में, आगमन शास्त्र और निगमनशास्त्र (Inductive and Deductive Logic) दोनों लिखे हुए हैं, जब कि यूनानियों और यूरोपीय लोगों ने केवल निगमनशास्त्र की विधियों को ही निकाला था। विलियम जोन्स (William Jones) ने

इस बात को सिद्ध किया है। उसका कहना है कि "जब हम भारत के हिन्दुओं के बृहत्, स्पष्ट, व्यापक दर्शनशास्त्रों को एक क्रम से इन यूनानियों के ग्रन्थों के साथ मिलाते है तब हमको यह विवश होकर निश्चय करना पड़ता है कि यूनानी लोगो ने अपना ज्ञान भारतीय दर्शन-शास्त्र के निर्झर (fountain head) से प्राप्त किया था।"

तुम्हारे ओल्ड टेस्टेमेण्ट (पुरानी इञ्जील Old Testament) से न्यू टेस्टेमेण्ट (नयी इञ्जील New Testament) का क्या भेद है? इसमें ऐसे वचन हैं:—"मै और मेरा पिता एक है।" "मेरा जीना, चलना-फिरना और अस्तित्व सब कुछ उस (ईश्वर) में है।" "आदि में शब्द था, और शब्द ईश्वर के साथ था, और शब्द ईश्वर था।" "जिस किसी ने पुत्र को देख लिया है, उस ने पिता को देख लिया है।" "स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है।" "अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो।" फिर जब ईसामसीह कहता है कि:—"तुम मेरा मांस खाओ और रक्त पिओ, और जब तक मेरा मांस नहीं खाते और रक्त नहीं पीते, तब तक तुम बच नहीं सकते।" अब देखो, लोगों ने इस वचन की कैसे मिथ्या व्याख्या की है। उसके मांस और रक्त को खाने व पीने और उसमें डूबने के स्थान पर वे वृथा उसकी पूजा करते है। दर्शन-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, और युक्ति की पटरी पर जो दौड़ता और आगे बढ़ता है, वही सब पढ़ सकता है, ऐसा क्यों? वेदों पर पुस्तकें पढ़ो और तुमको पता लगेगा कि ये सब बाते वेदों में हैं, जिनका उपदेश और प्रचार हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष में हुआ था। ईसामसीह के मृतोत्थान और धर्मोपदेश के विषय में पूछो, तो ये भी हिन्दू और वेदान्ती विचार हैं। यहाँ राम तुम्हें एक पुस्तक का हवाला देता है जिसे एक रूसी 'निकोलस नोटोविच' ने फ्रांसीसी भाषा में लिखा है और जो अंग्रेज़ी भाषा में अनूदित हो गई है। पुस्तक का नाम "ईसा-मसीह का अविज्ञात जीवन" (The unknown life of Jesus) है।

यह पुस्तक किसी हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर लिखी गई है, जो तिब्बत के मठ में पायी गयी थी। ग्रन्थकार ने उस स्थान को देखा है, और जब तुम पुस्तक पढ़ चुकोगे, तब तुम इन सब बातों की सत्यता को अवश्य अनुभव कर सकोगे। इस पुस्तक में तुम्हें ईसामसीह के जीवन के उस भाग का वृत्तान्त मिलेगा जिसका जिक्र इञ्जील में कुछ भी नहीं हुआ है। यह वृत्तान्त उसके जीवन के आठवें वर्ष से लेकर तीसवें वर्ष तक का है। यह समय उसने भारतवर्ष में व्यतीत किया था। ये बातें ऐसी हों वा न हों परन्तु अपरोक्ष रूप से ज्ञान योरुसलम में अवश्य पहुँचा था। यह तथ्य प्रकट करता है कि ईसामसीह के कार्य और धर्मोपदेश वेदान्त की सूक्ष्म प्रतिध्वनि हैं; वही वेदान्त भारतवर्ष का धर्म-शास्त्र है! अपनी इञ्जील में तुम यह बात पढ़ते हो "Love your neighbour as your self" "अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो।" परन्तु इसके लिए कोई युक्ति अथवा उपपत्ति वहाँ नहीं दी गई है। जैसा महाभाग हरबर्ट स्पेन्सर कहता है कि जब हम किसी बच्चे को केवल इतना कहते अथवा आज्ञा देते हैं कि "तुम ऐसा करो" तो हम उस सचेत (विचार-युक्त) प्राणी की उच्च प्रकृति को दास बनाते हैं, क्योंकि तर्क-शास्त्र-वेताओं ने मनुष्य को एक सचेत (विवेक-शील पशु कहा है। हम उसी समय बालक के मन को दासत्व में जकड़ कर दास बना देते हैं, जब उसको किसी अधिकार के आधार पर काम करने की आज्ञा देते हैं। उसे आज्ञा के जोर से काम करने को विवश करते हैं। बालक उस काम को जरूर करेगा जिसे तुम चाहोगे कि वह अपनी इच्छा या मर्जी के अनुसार करे। पर जिस समय तुम कहते हो:—'यह करो,' और 'यह मत करो,' तो तुम उसके मन को दास बना डालते हो। किसी बालक से पूछा गया कि "तुम्हारा नाम क्या है?" तो उसने उत्तर दिया कि मुझे पता नहीं, हाँ, मेरी माता मुझसे कहा करती है—'मत करो''मत करो'। जब तुम कहते और आज्ञा

देते हो कि "तुम अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो," तो तुम्हें इसके साथ लोगों को यह भी बतलाना चाहिए कि क्यों और कैसे हमें ऐसा करना चाहिए। मैं अपने पड़ोसी से अपने सरीखा प्यार कैसे कर सकता हूँ जब कि ईसाई मत के पूज्य लोग (मिनिस्टर और डाक्टर आफ डिविनटी, Ministers and Doctors of Divinity) अपने अन्तः हृदय में हिन्दुओं से घृणा करते हैं। ऐसी दशा में हमारे लिए यह कैसे सम्भव है कि हम अपने पड़ोसियों को अपने सरीखा प्यार करें? ऐसी ऐसी स्पष्ट और निश्चित आज्ञायें इस संसार में प्रचारित हुई हैं, पर संसार आज भी वैसा ही बना हुआ है जैसा पहिले था। कान्फ्यूसिअस, जोरोआस्टर और भगवान् कृष्ण ने उपदेश दिये पर फिर भी संसार अपने पापों में सना रहता है। क्या संसार पहले से कुछ अधिक खुश और सुखी है? किसी ने कहा है कि दुनियाँ कुत्ते की पूँछ के समान है। कुत्ते की पूँछ को एक बाँस की पंगुली में बारह वर्ष तक बन्द रक्खो पर जब तुम पंगुली हटा लोगे, पूँछ पहले के समान एँठ जायगी। यही उदाहरण संसार पर भी ठीक उतरता है। इसे सुधारने का यत्न करो, परन्तु ज्योंही तुम इसे पुनः छोड़ दोगे, तो यह अपने पुराने ढर्रे पर आ जावेगा। इस पर एक कहानी याद आती है। कोई मनुष्य एक समय एक नामधारी स्वामी (Pseudo Swami) के पास यह पूछने गया कि वह अमुक लड़की का प्रेम किस रीति से जीत सकता है। इस नामधारी बनावटी स्वामी ने कहा "मैं तुम्हें एक मंत्र, एक विधि बतलाऊँगा जिसे तुम्हें बराबर दोहराना होगा। लगातार तुम इस मंत्र को जपो और तुम इस लड़की (अपनी प्रिया) का प्रेम जीत लोगे, पर इस बात का ख्याल रखना होगा कि जिस समय तुम इस मंत्र को जपो, तब तक बन्दर का ख्याल तुम्हारे मन में न आने पावे।" यह मनुष्य मन ही मन इस मंत्र का जाप करने लगा, परन्तु हाय, दुर्भाग्यवश! बन्दर का ध्यान बराबर सारे समय उसे सताता

रहा। तब वह मनुष्य उस नामधारी साधु के पास वापिस आकर बोलाः—"मुझे जीवन पर्यन्त बन्दर का ख्याल मंत्र जाप के समय कभी न आया होता यदि आप बन्दर का ख्याल न करने की पहले से आज्ञा न देते।" इसी प्रकार हे पुण्यात्माओ! विधि निषेध भी इसी प्रकार का निर्देश है। वास्तव में विधि-निषेध 'do's,' 'don'ts' thou shalts' and thou shalt nots' = तुम यह करो, यह मत करो (तुझे यह करना होगा, तुझे यह न करना होगा) ईश्वर की आज्ञायें नहीं है। क्या तुम जानते हो कि मनुष्यों की अपेक्षा गाय, बैल, और सिंह आदि क्यों निर्मल रहते हैं? उनमें विषय-वासना वा इन्द्रियों को अपने वश मे करने के संबंध में कोई विधि निषेध के नियम नहीं हैं। इस आज्ञा में—"तुझे अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करना होगा"—हम स्पष्ट देखते है कि निशाना चूक गया है। इसमें हमसे दूसरों के प्रमाण पर (किसी अन्य के इच्छानुसार) कोई बात स्वीकार और ग्रहण करने को कहा गया है. क्यों मुझे अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करना होगा? वेदान्त दर्शन में नौ भिन्न भिन्न प्रकारों से यह सच्चाई हमें बडी ही उत्कृष्ट, अद्भुत और प्रशंसनीय रीति से समझायी गई है। वेदान्त के प्राचीन ग्रन्थों के पढ़ने वालों को बतलाया गया है कि तुम्हारी ही आत्मा सबकी आत्मा है, तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारी आत्मा है। जब मै यह जान लेता हूँ कि मेरा पडोसी मेरी ही आत्मा है, तब स्वभावतः मैं उसको अपनी आत्मा के समान प्यार करता हूँ। यहाँ यह तत्व इञ्जील की अपेक्षा बहुत ही स्पष्ट रूप से रखा गया है। हमें मनोविज्ञान (Psychology) के नियम जानना चाहिए, क्योंकि मानव मन की ऐसी ही प्रकृति है। किसी बालक से कहो कि 'आग न छुओ,' तो वह उसे अवश्य छुएगा। परन्तु यदि बालक से ऐसा कहो कि यदि तू आग छुएगा तो यह तुझे जला देगी, तब वह अपनी ही समझ और इच्छा से उस आग को कभी नहीं छुएगा। परन्तु कभी भी

उससे ऐसा मत कहो कि "आग को तू मत छू।" जब तुम मुझे केवल इतना ही कहते हो कि "अपने पडोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो," तो मैं इसे नहीं मानूँगा। परन्तु जब तुम मुझे ऐसा कहते हो कि मेरा पड़ोसी स्वयं मेरी ही आत्मा है और मैं वह हूँ, तब उसके साथ अपने सरीखा प्रेम और वर्ताव किये विना मै रह नहीं सकता।

राम ने तुमको यूरोपीय संसार के आत्मवादियों की बड़ी संस्था का स्रोत बताया है। अब राम थोडा और आगे बढ़ेगा।

ये महान् उपदेश जो इञ्जील द्वारा प्रकट हुए, वे यूरोप के घोर अविद्या काल में लुप्त हो गये थे, और संसार को एक नये उद्धार की ज़रूरत थी। अब देखो कहाँ से यह नया उद्धार आया जिसने अन्धकार के युग को हटा दिया, और अपने साथ मध्य कालीन युग (Middle ages) के अज्ञान को बहा ले गया? जहाँ तक तुम्हारे स्वीकृत ईसाई मत का सम्बन्ध है वहाँ तक तो अन्धकार काल ही था। यदि तुमने इतिहास पढा है तो इस बात में तुम राम से सहमत होगे कि घोर अज्ञानमय यूरोपीय मध्यकालीन युग नवयुग (Renaissance) वा विद्या के पुनरुत्थान के युग द्वारा बहा दिया गया था। यह नवयुग पुनरुत्थान मूर्ति-पूजक यूनान और रोम (Greece and Rome) के ग्रन्थों के अवलोकन से प्रकट हुआ था। यह मूर्ति पूजकों की विद्वत्ता थी जिसने अन्धकार और मध्ययुग के अज्ञान (Dark and Middle Ages) को हटाया और मूर्ति-पूजकों की यह विद्या अपनी उत्पत्ति के लिए भारतवर्ष की ऋणी है। पुनः संसार को शुद्ध करने का यह नया उद्धार भारतवर्ष से आया था। अब राम संसार के आधुनिक काल के विचारों की ओर आता है।

अब, ऐ प्रियात्माओ! अमेरिका का यह नूतन विचार क्या है? ईसाइयों का विज्ञान (Christian Science), ईसाइयों का ईश्वरी-ज्ञान (Theosophy) और अमेरिका का यह अध्यात्मवाद (Spiritu-

lism) है क्या ? चाहे हिन्दू उपदेशकों द्वारा जो सशरीर या बिना शरीर ही यहाँ आये, चाहे उन लेखों द्वारा जो शोपनहावर को गुप्त रीति से प्राप्त हुए, या अमेरिको की नूतन विचार धारा के सीधे मार्गों द्वारा प्रगट हुए, यह सारा का सारा भारतवर्ष से आया है। संसार के राजनैतिक इतिहास के नूतन विचार जिसे तुम असली जन-सत्ता या प्रजातंत्रवाद, या जनवाद या समाजवाद (radical democracy or socialism) कहते हो, उसे भी राम तुम्हें सिद्ध करके बतला सकता है कि वह सब विशेष करके (अपने विशेषण और लक्षणों से) वेदान्तिक है। राम ने समाजवाद (Socialism) और वेदान्त पर एक लेख लिखा है और दूसरी पुस्तक 'राष्ट्रों का उत्थान-पतन,' (rise and fall) लिखी है। इन पुस्तकों में राम ने उन बातों के प्रमाण दिये हैं जिन्हें राम अभी तुमसे कह रहा है।

अमेरिका में नूतन विचार का पिता और पैगम्बर (prophet) इमर्सन हुआ है। उसने सच्चाई व आध्यात्मिकता का प्रचार किया है। साथ ही उसने कभी आध्यात्मिकता (रूहानियत) का कोई स्वार्थपूर्ण उपयोग नहीं किया। उसने सत्य को ही सर्वप्रिय बनाया। परन्तु अमेरिका में इमर्सन का आध्यात्मिक पिता, उसको उभारने वाला वा उसमें प्राण फूकने वाला हेनरी. डी थोरो ही (Henry D. Thoreau) था। इमर्सन की अपेक्षा वह अधिक मौलिक था। इमर्सन का दूसरा प्रेरक कारलाइल (Carlyle) है। अब देखो, कहाँ से इन मनुष्यों—कारलाइल, इमर्सन, थोरो और वाल्ट ह्विटमैन (Carlyle, Emerson, Thoreau, and Walt Whitman) को उत्प्रेरणा प्राप्त हुई ? इनकी प्रेरणा (स्फूर्ति, अनेक स्रोतों से प्रकट हुई। काण्ट और शोपनहावर (Kant and Schopenhauer) जैसे मनुष्यों के लेख कहाँ से उद्‌भूत हुए ? उनका कोई कारण, उनका स्रोत वेदान्तिक ग्रन्थों के प्रत्यक्ष अध्ययन के सिवाय और कुछ नहीं है। राम

यह सिद्ध कर सकता है कि नूतन उद्गार वा प्रेरणा जो कारलाइल और रस्किन द्वारा संसार को मिली है, वह कांट, शोपनहावर और फिक्टे (Kant Schopenhauer and Fichte) के दर्शन-शास्त्रीय लेखों से उत्पन्न है। और राम तुमको यह सिद्ध कर देगा कि इस देश का नूतन विचार भारतवर्ष से आया है, क्योंकि कांट, शोपनहावर, फिक्टे के और कुछ हद तक स्वीडनबर्ग के समस्त लेख प्रत्यक्ष हिन्दू दर्शन-शास्त्र से उत्प्रेरित हुए हैं। शोपनहावर अपनी पुस्तक (The World is Will and Idea) (सारा संसार संकल्पमात्र वा इच्छा मात्र है) में कहता है:—

"In the whole world there is no religion or philosophy so sublime and elevating as the Vedanta (Upanishads) This Vedanta (Upanishads) has been the solace of my life, and it will be the solace of my death."

"समस्त संसार में ऐसा कोई धर्म या दर्शन-शास्त्र नहीं जो इतना उत्कृष्ट और उन्नत हो जैसा कि वेदान्त (उपनिषद्)। यह वेदान्त (उपनिषद्) मेरे जीवन में शान्ति देनेवाला रहा है और यही मेरे मृत्यु में शान्ति प्रदान करेगा।" क्या वेदान्त दर्शन के प्रति इससे बढ़कर और भी कोई श्रेष्ठ स्तुति भेंट की जा सकती है? उसके लेखों में भी वेदान्तिक दर्शन और प्रकरण ग्रन्थों के अनेक संकेत है। फिर फ्रान्स के दर्शन-शास्त्र के इतिहास-लेखक विक्टर कज़िन (Victor Cousin) का कथन है—

"There can be no denyig that the ancient Hindus possess the knowledge of the true God. Their philosophy, their thought is so sublixe, so elevating, so accurate and true, that any comparison with the

writings of the Europeans appears like a Promethean fire, stolen from heaven as in the presence of the full glow of the noon-day Sun"

"इस बात से कभी इन्कार नहीं हो सकता कि प्राचीन हिन्दू परमेश्वर का वास्तविक ज्ञान रखते थे। उनका दर्शन-शास्त्र (तत्व ज्ञान), उनके विचार इतने उत्कृष्ट, इतने उच्च, इतने यथार्थ और सच्चे हैं कि यूरोपीय लेखों से उनकी कोई तुलना करना ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ठीक मध्याह्न कालीन सूर्य के पूर्ण प्रकाश में स्वर्ग से चुराई हुई प्रोमीथियन आग Promethean fire का झुरपुट उजाला।" अन्य स्थान पर वह लिखता है:—

"When we read with attention the poetical and philosophical monuments of the East, above all, those of India which are beginning to spread in Europe, we discover there many a truth and truths so profound, and which make such a contrast with the meanness of the result, at which the European genius has some times stopped and we are constrained to bend the knee before the philosophy of the East, and to see in this cradle of the human race the native land of the highest philosophy."

जब हम ध्यान पूर्वक पूर्वीय, विशेष करके भारतवर्षीय काव्य और दर्शन-शास्त्र की पुस्तकें और लेखों को पढ़ते हैं, जिनका विस्तार और प्रचार अभी अभी यूरोप में होने लगा है, तो, इसें उनमें बहुत सी सच्चाइयाँ मिलती हैं, और वे सच्चाईयाँ ऐसी हैं कि यूरोपीय दर्शन के निष्कर्ष उनकी तुलना में बिल्कुल हेंच-ठहरते हैं, यूरोपीय बुद्धि की अपंगुता और भारतीय दर्शन की गम्भीरता ऐसी महान् है कि हम को पूर्व के

दर्शनशास्त्र के सामने मजबूरन घुटने टेकने पड़ते हैं, हमें मानव जाति के इस झूले में दर्शन-शास्त्र की सर्वोच्च जन्म-भूमि के दर्शन होते हैं।"

श्लेगल (Schlegel) का कहना है कि हिन्दू विचार के मुकाबले में यूरोपीय दर्शन-शास्त्र की सर्वोच्च डींग ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे बड़े भारी बलवान् दैत्य के सामने एक बावन अंगुल का बौना। भारतीय भाषा, साहित्य और दर्शन-शास्त्र के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ में, वह लिखता है:—

"It cannot be denied that the early Indians possessed a knowledge of the true God, all their writings are replete with sentiments and expressions, noble, clear and severely grand, as deeply conceived and reverentially expressed as in any human language in which men have spoken of their God"

"यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन काल के भारतवासी परमात्मा का सत्य ज्ञान रखते थे। उनके समस्त लेख (ग्रन्थ) ऐसे भावों (अभिप्रायों) और उदाहरणों से परिपूर्ण हैं जो अति श्रेष्ठ शुद्ध, और विशाल, इतने गहरे हैं। वे इतने आदर और भक्ति पूर्वक व्यक्त किये गये हैं कि ऐसे किसी अन्य मानवी भाषा में, जिसमें मनुष्यों ने अपने ईश्वर सम्बन्धी विचार खोले हैं, नहीं मिलते। और वेदान्त दर्शन के विषय में विशेष करके उसका कहना है कि:—

"The divine origin of man is continually inculcated to stimulate his efforts to return, to animate him in the struggle and incite him to consider a reunion and re-corporation with Divinity as the one primary object of every action and exertion."

"मनुष्य का दिव्य स्वरूप उसे निरन्तर इस लिए समझाया और चित्त में धारण कराया जाता है कि इस से मनुष्य अपने स्वरूप की ओर लौटने के लिए अपने परिश्रम को खूब उत्तेजित करे, इस जीवन-प्रयास में अपने को सजीव वा प्रोत्साहित करे, और अपने को इस विचार में प्रवृत्त और प्रेरित करे कि "प्रत्येक कर्म, व्यापार, उद्यम का एक मात्र मुख्य उद्देश अपने निज स्वरूप (आत्मा) से पुनः मिलाप और योग प्राप्त करना है" । मैक्समूलर (Max Muller) कहता है कि:—

"If the judgment or the opinion of such a grand philosopher as Schopenhauer require endorsement, I, on the basis of my long life, devoted to, the study of almost all religions, and philosophies, must humbly endorse it." He says—"If philosophy or religion is meant to be a preparation for the after-life, a happy life and happy death, I know of no better preparation for it than the Vedanta." Again he says "I am neither ashamed, nor afraid to say that I share his (Schopenhaner's) enthusiasm for the Vedanta and feel indebted to it for much that has been helpful to me in my passage through life"

"यदि शोपनहावर जैसे महान् दर्शन-शास्त्रज्ञ की सम्मति और निर्णय पर कोई बल देने की आवश्यकता है, तो मै अपने इतने दीर्घ-काल पर्यन्त के प्रायः सब धर्म और दर्शन-शास्त्र के अध्ययन के आधार पर नम्रता से इस पर अपनी स्वीकृति, और सही देता हूँ।" आगे उसका कथन है:—"यदि दर्शन-शास्त्र (तत्व ज्ञान) या धर्म का अभिप्राय और उद्देश्य पुनर्जीवन, एक सुखी जीवन और सुखपूर्वक मृत्यु के लिए तैयारी करना है, तो मै इसके लिए वेदान्त से बढ़कर और

कोई अच्छी तैयारी नहीं जानता।" और पुनः मैक्समूलर कहता है—"मुझे ऐसा कहने में न कोई लज्जा है और न भय कि वेदान्त के लिए शोपनहावर में जो उत्साह और उमंग है, मैं भी उसका साझीदार हूँ, और जितना ही वह मेरी जीवन-यात्रा में सहायक रहा है उस सबके लिए मैं अपने को उसका ऋणी मान करता हूँ।" सर एडविन आर्नल्ड के ग्रन्थों (India Civilized his Song Celestial, his Light of Asia, his Song of Songs) में इस विषय का वर्णन है, जिसका राम तुमको हवाला दे रहा है। थोरो (Thoreau) अपने ग्रन्थ (Walden pond and letters) में बहुधा वेदान्तिक लेखों का हवाला देता है, और अपने पर्यटन के वृत्तान्तों में भी थोरो भारतीय लेखों का हवाला देता है। अमेरिका में समस्त नूतन विचार का मूल थोरो से निसृत हुआ है। उसने स्वयं स्वीकार किया हुआ है कि उसने अपना सारा ज्ञान हिन्दुओं से प्राप्त किया है। इमर्सन (Emerson) लन्दन-यात्रा के पश्चात् जब अमेरिका लौटनेवाला था, तब उससे रेलवे स्टेशन पर कारलायल से भेंट हुई। उपहार वा पारितोषिक के रूप में कारलायल ने इमर्सन को एडविन जोन्स-प्रणीत भगवद्गीता के प्रथम अनुवादों में से एक अनुवाद दिया। यह पुस्तक कैण्ट के समय के पूर्व ही, लैटिन, फ्रेञ्च, और जर्मन भाषा में अनुवादित हो चुकी थी। कैण्ट ने यूरोप के दार्शनिक विचारों का पुनरुत्थान किया है, और अपने 'देश, काल वस्तु की स्वतः सिद्ध उत्पत्ति' वाले सिद्धान्त के लिए वह भारतवर्ष का ऋणी है।

मिसिज़ ऐड्डी (Mrs Eddy) के ग्रन्थ की पहली आवृत्ति में भगवद्गीता के उद्धरण हैं, परन्तु बाद की आवृत्तियों से वे निकाल दिये गये हैं। ईश्वर का शब्द यदि बिलकुल ईश्वर वाक्य ही है, तो वह शुद्ध, स्पष्ट और कुशल होना चाहिए।

राम के कहने का यह मतलब नहीं है कि यहाँ के लोग

ग्रन्थ-चोर या नकल करने वाले हैं। राम यह मानता है कि अमेरिका के लोगों के लिए इन सच्चाइयों का पुनः मालूम कर लेना वैसा ही है जैसा कि इन्हें भारतवर्ष से ग्रहण कर लेना। इस सूर्य तले कुछ भी नया नहीं है।

असली और यथार्थ समाजवाद (Socialism) आज कल हिमालय के स्वामियों में प्रत्यक्ष रूप से मोजूद है। इग्लैंड के ऐडवर्ड कार्पेण्टर ने अपना साधारण समाजवाद (Socialism) हिन्दुओं से प्राप्त किया था। सो तुम्हारा सारा का सारा नूतन विचार हिन्दुओं का पुरातन और अप्रचलित विचार है। यथार्थ केन्द्र, सम्पूर्ण सत्य, और समग्र नूतन विचार को प्राप्त करने के लिए, हे पुण्यात्माओ! तुम्हें अभी जरा और प्रतीक्षा करनी होगी और भारतवर्ष से और ज्ञान प्राप्त करना होगा। अभी तक बहुत से अद्भुत ग्रन्थों का तुम्हारी भाषा में अनुवाद नहीं किया गया है, जैसे कि योगवासिष्ठ जो अमेरिका के समस्त नूतन विचार का वर्णन करता है। यह ग्रन्थ बहुत ही खुला हुआ, तर्कयुक्त और वस्तुतः सच्ची कविता में लिखा हुआ है। इसी रीति से हमारे गणित शास्त्र के ग्रन्थ लिखे हुए हैं। और वहां इस लिए गणित शास्त्र विद्यार्थियों के लिए एक हव्वा बाटा (bug bear) होने के स्थान पर, जैसा कि बहुत से विद्यार्थियों के साथ हो जाता है, आनन्द रूप बन जाता है।

इस संसार में तुम्हारा कार्य आनन्दपूर्वक समाप्त होना चाहिए। इससे राम को एक उद्यान का स्मरण होता है जिसमें निर्धन काम करने-वाले कुली रास्ते में पत्थर फोड़ा करते थे। उनके हृदय उदास और पत्थर समान ही भारी थे, वे दिन रात परिश्रम ही किया करते थे। उसी बाग की तृणभूमि पर जिसमें ये कुली काम कर रहे थे, कई राजकुमार टैनिस खेल रहे हैं। उनका काम खेलमात्र, आनन्द लेने का है, यद्यपि अपने आनन्द में वे संभवतः कुलियों से भी अधिक पसीना बहा रहे हैं। इस दुनिया में तुम्हारी वृत्ति वा स्थिति टैनिस खेलनेवाले राजकुमारों के

समान होनी चाहिए। उसका काम खेल और आनन्द रूप है। यह नहीं कि तुम्हें काम और परिश्रम छोड़ना है, वरन् यह कि अपने काम की ओर तुम्हारा भाव बदल जाना चाहिए। और इस प्रकार तुम काम और आनन्द दोनों सदा भोग सकोगे। तुम एक दूसरे प्रकार के आनन्द से परिपूर्ण हो जाओगे, जो तुम्हारे आत्मस्वरूप की स्थिति है। जब तुम अपनी दिव्य प्रकृति के सुन्दर देवदारु और चिनार-वृक्षों के शिखर पर बैठोगे, तो इस सुन्दर आत्मिक विचार की दिव्य प्रकृति के अलौकिक राग और अद्भुत काम तुम्हारे आत्मा से अपने आप बहने और बरसने लगेंगे। "That which is forced is never forcible" वह जो बलपूर्वक ठूंसा जाता है, स्वयं कभी प्रभावोत्पादक नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश निकलता है, जैसे गुलाब से सुगन्ध निकलती है, जैसे सुन्दर बर्फानी शिखरों, पर्वत की नदियों और निर्झरों से शीतलता निकलती है, ऐसे ही प्रकाशों के प्रकाश! शान्ति, आनन्द, प्रेम और प्रकाश सदा तुमसे निकलते हैं। ओ३म्, यही शान्ति सदा तुम्हारे साथ हो।

भारत की ओर से अमेरिकनों से विनय

(अपील)

२८ जनवरी, १९०३ को गोल्डन गेटहाल, सेनफ्रांसिस्को में
दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान

आज की वक्तृता का विषय है अमेरिकावासियों से विनय। न जाने क्यों आज बहुत ही थोड़े अमेरिकन आये हैं। अच्छा, कुछ परवाह नहीं, जो आये है, वही, राम की दृष्टि में केवल अमेरिका के नहीं, वरन् यूरोप और अखिल विश्व के प्रतिनिधि हैं। आज जो शब्द कहे जायेंगे वे यदि इस लघु श्रोतृमंडली के हृदय को स्पर्श करेंगे, यदि वे शब्द तुम में से किसी एक भी व्यक्ति के मर्म को भेद सकेंगे, यदि आप लोगों में से संग्रार्थ पाँच या छः या सात भी इस काम को उठा लेंगे, यदि इस अरण्यरोदन को सुन लेंगे, तो राम इन शब्दों को सफल समझेगा।

राम आपकी अन्तरात्मा से विनती करता है, आपके भीतर की अनन्तता से विनय करता है, और राम का दृढ़ विश्वास है कि एक ही व्यक्ति के भीतर की अनन्तता अद्भुत और विस्मयजनक कार्य कर सकती है। कृपया वास्तविक आत्मा के सामने या अनन्तता के सामने सांप्रदायिकता (दलबन्दी) का कोई पर्दा खड़ा न कीजिये। दया करके कम से कम एक घण्टे के लिए सब पर्दे और रंग, जाति-पाँति तथा मत-मतान्तर के भेद-भाव जिनके कारण लोग किसी विदेशी की बातें खुशी से सुनने के लिए तैयार नहीं होते, दूर कर दीजिए, हृदय से निकाल डालिये।

भारत के प्राचीन कार्य

भारतीय बुद्धिमत्ता के श्रेष्ठ रत्नों की चर्चा राम प्रायः दो मास से तुम लोगों से कर रहा है, भारतीय धर्मग्रन्थो का जीवनदाता अमृत, पौष्टिक दुग्ध, तुम्हें पिला रहा है। राम आज तुमसे, उस खान के सम्बन्ध में, जिससे ऐसे रत्न निकले थे, उस गौ के विषय में, जिसने यह दुग्ध दिया था, कुछ कहना चाहता है। राम आज तुमसे, उस देश के सम्बन्ध मे जिसने पहले पहल इस सत्य का प्रचार किया था, उस भूमि के विषय में जो संसार के सब धर्मों की जननी है, कुछ कहना चाहता है। हाँ, भारत ने, चाहे प्रत्यक्ष रूप से या चाहे अप्रत्यक्ष रूप से, संसार को सब धर्मों का दान दिया है। राम तुमसे उस भूमि के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता है, जो आपको आज भी यूरोप और अमेरिका में नित्य उपजनेवाले नूतन से नूतन धर्म और सम्प्रदाय दे रही है। तुम्हारे सभी नूतन विचार (New Thought) थियासोफी (Theosophy) स्पिरिचुअलिज्म (अध्यात्मवाद या प्रेत-वाद Spiritualism) ईसाई विज्ञान (Christian Science), मानसिक चिकित्सा (Mental Healing) ये सबके सब जिनका तुम्हें आज गर्व है, ये सभी बिना अपवाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर मूलत. भारत से ही उत्पन्न हुए हैं। राम तुमसे उस भूमि के सम्बन्ध में कह रहा है जिसने भूतकाल और वर्तमान काल में संसार को सभी प्रकार के दर्शन-शास्त्र दिये है। अफलातूँ, सुकरात, पिथागोरस, प्लोटिनस, (Plato, Socrates, Pythogcras Plotinus) सरीखे यूनानी तत्त्व-वेत्ता अपनी अपनी ज्ञान-रश्मि के लिए भारत के ऋणी है। दर्शन-शास्त्र के इतिहास से यह स्पष्ट होता है। शोपेनहावर, श्लेगल, शेलिंग, एम कजिन इत्यादि (Schopenhauer, Schlegal, Schelling, M Cousin, etc) ये लोग स्वीकार करते हैं कि वे अपने ज्ञान के लिए भारत के वेदान्त, सांख्य और बौद्ध दर्शन, उपनिषदों या गीता के ऋणी है। तुम्हारे आधुनिक अद्वैतवाद ने चाहे

अमेरिका का हो, इंग्लैंड का या जर्मनी कहीं का भी हो, भारतवर्ष से अपना प्रकाश प्राप्त किया है। राम तुमसे शंकर और कृष्ण की भूमि का जिक्र कर रहा है, जिस भूमि ने उन उच्च विचारों और उदात्त कल्पनाओं का प्रवर्तन किया, जिनसे तुम्हारे वन्दनीय इमर्सन, वाल्ट ह्विटमैन, सर एडविन आर्नल्ड और मक्समूलर (Emerson, Walt Whitmen, Sir Edwin Arnold, and Maxmuller) सोत्साह उत्प्रेरित और प्रबोधित होते रहे, जो न केवल काव्य और दर्शनशास्त्र की ही भूमि है, जो न केवल श्रेष्ठ विचार और उदात्त कल्पनाओं की ही भूमि है, वरन् जो उतने ही दर्जे पर शौर्य और शारीरिक बल की भी भूमि रही है। शारीरिक शक्ति और तेज की भूमि—ये शब्द सुनकर आप चकित होंगे। आजकल भी, अंग्रेजी साम्राज्य के सबसे प्रबल सहायक और रक्षक कौन लोग हैं? ये पूर्वीय भारत के सिख, गोरखे, मरहटे और राजपूत हैं। इन सब अवसरों पर जब अंग्रेजों का बड़े भयंकर शत्रुओं से सामना होता है, तब भारत के ही सिपाही युद्ध के वेग को सम्हालते हैं। राम उस भारत की तुमसे चर्चा कर रहा है जो किसी समय अन्य सब देशों से अधिक धनाढ्य था। भारत से पल-पलकर अनेकों राष्ट्र समृद्ध हुए। उस अति कमनीय भारत की खोज में ही कोलम्बस को अमेरिका का पता लगा। शुरू में अमेरिका का नाम भारत था। राम तुमसे इस भूमि की चर्चा कर रहा है जो एक समय संसार में सर्वोपरि थी। वह संसार में रमणीक वनों और शस्य श्यामल खेतों से सम्पन्न, महान् हिमालय से रक्षित, अत्यन्त उन्नत और उत्कृष्ट देश था। किन्तु राम का इतना ही मतलब नहीं है। भारत न केवल शरीर से ही, वरन् बुद्धि, सदाचार और अध्यात्म विद्या में भी संसार का शिरोमणि था। आज वह भूमि संसार के चरणों में है। ऐ अमेरिकावासियो! तुम आज संसार के शिर हो, और भारत की स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है, भारत तुम्हारा चरण है। राम तुमसे एक विनय करता है। ऐ शिर! हे शिर!! यदि तू बलवान् और स्वस्थ होना चाहता है, तो तुझे पैरों

की खबर लेनी चाहिए। यदि पैर क्षतिग्रस्त या लुटैल रहेंगे तो शिर भी पीड़ित होगा। यदि पैरों में दर्द है, यदि पैर पीड़ित है, तो क्या शिर को उससे हानि न पहुँचेगी ? ऐ शिर! तेरे पाताळवासियों की ओर से राम तुझसे विनती करता है। जिस माता ने अपने तत्वज्ञान और काव्य से, अपने उच्च विचारों और धर्म से समग्र संसार को पाला था, विश्व की वह माता, संसार की वही प्राचीन पालनहारी, आज बीमार है। तुम्हारी माता आज रुग्णा है। सबसे बड़ा वंश (scion), आर्य परिवार की सबसे बडी बहन, पूर्वीय भारत आज रोगग्रस्त है। क्या तुम उसकी खबर न लोगे ? वह कामधेनु बीमार है। वह मरी नहीं है। वह रोग-ग्रस्ता है। तुम उसकी सहायता कर सकते हो। तुम उसे चंगा करने में सहायक बन सकते हो। भारत संसार को दूध, पुष्टिकर भोजन, बलकारी औषधि, ईश्वर प्रेरित दिव्य ज्ञान देता रहा है। वही भारत, आज गौ की तरह, सेवा-सुश्रूषा की अपेक्षा कर रहा है। यह गौ भोजन के लिए हाय हाय कर रही है, क्षुधा पीडित भूख और प्यास से व्याकुल है। तुम्हें उसे घास और चारा खिलाना है। संसार भर उससे दूध और पौष्टिक भोजन लेता रहा है, अरे, अब उसे सस्ती घास ही देते रहो, उसे ऐसी कोई चीज़ दो कि वह जीती रहे। गोमांस भक्षक इंगलैंड मांसाहारी यूरोपीय देश कहेंगे, हम इस गौ को खिलाना नहीं चाहते, हम उसे मारकर खाना चाहते हैं। बहुत अच्छा, तुम्हारे जो मन भावे वही करो। किन्तु एक बात याद रक्खो, यदि तुम उसे मार कर खाना चाहते हो, तो भी तुम्हें उसके स्वास्थ्य का खयाल रखना चाहिए। रोगी गौ का मांस तुम्हारे स्वास्थ्य को नष्ट कर देगा, तुम्हारे लिए हानिकर होगा। अरे इंगलैंड, यूरोपीय राष्ट्र! यदि तुम उसे जीता रखना चाहते हो तो तुम्हें उसके स्वास्थ्य की भी चिन्ता करनी होगी।

अमेरिका से आशा

अमेरिकावासियों के सामने, इस युग के शूरवीर अमेरिकनों के सामने, स्वार्थत्यागी अमेरिकनों से, उदारहृदय अमेरिकनों से, जो सत्य

के नाम पर चीड़-फाड़ के लिए अपने शरीर तक को दे देते हैं, राम भारत की ओर से विनय करता है। अभी उस दिन एक महानुभाव अमेरिकन ने सत्य का पक्ष पुष्ट करने के अभिप्राय से चीड-फाड के लिए अपना जीवन अर्पण किया था। पदार्थ विज्ञान पर अपना बलिदान करनेवाले अमेरिकावासियो! राम तुम अमेरिकनों से विनय करता है। कहो, अमेरिकावासियो! क्या तुम सुनोगे? कहो, अमेरिका के समाचार-पत्रो! क्या तुम राम का सवाल पूरा न करोगे? राम के शरीर को जाने दो, राम को कुचल डालो, उसके टुकडे टुकडे कर दो, उसके खण्ड खण्ड कर डालो, इस शरीर को जैसा तुम्हारा जी चाहे वही करो किन्तु भारत के पक्ष को अपना लो, सत्य के पक्ष को अपना लो। अमेरिकनों को, जिन्होंने गुलामी को मिटा दिया, अमेरिकनों को, जो आज इस देश मे जाति-भेद को तोड रहे हैं, ऐसे धन्य अमेरिकनों को, अपनी ओर ध्यान देने के लिए भारत पुकार रहा है।

मान लीजिये कि भारत बहुत ही खराब है, मान लीजिये कि भारत ने संसार को कुछ भी नहीं दिया, मान लीजिये हिन्दू दुनिया में अत्यन्त निकृष्ट लोग है, तब तो तुम्हारे ध्यान पर उनका और भी अधिक दावा होना चाहिए। यह तो और भी प्रबलतम कारण है कि तुम उसकी सेवासुश्रूषा और सहायता का ख्याल करो।

यदि कोई मनुष्य बीमार है तो वह केवल अपने ही को हानि नहीं पहुँचाता, वरन् उस रोग को सारे संसार में फैलाता है। यदि एक व्यक्ति सर्दी (श्लेष्मा) से व्यथित है तो दूसरे उसके संसर्ग से रोगी हो जाते है। भारत सर्दी से व्यथित हो रहा है। आप कह सकते है कि किसी गर्म और तापपूर्ण देश को सर्दी कैसे दबा सकती है? वह जाड़े की सर्दी से पीड़ित नहीं है, किन्तु वह ठिठुरानेवाली दरिद्रता, और गरीबी की सर्दी से दुःखी है। अब आप जानते हैं कि यदि एक मनुष्य सर्दी से परेशान है, तो उसके पड़ोसियों को भी उसकी सर्दी लग जायगी। यदि एक

मनुष्य हैजे से रुग्ण है, तो उसका रोग दूसरों को जा दबोचेगा। यदि एक मनुष्य चेचक से पीड़ित है तो दूसरों को छूत लगेगी। रोगी को उठाकर खड़ा करने में सहायता देना हरेक का और सबका कर्त्तव्य है, यदि उसके ही हित की दृष्टि से नहीं; तो सारे संसार के लिए तो अवश्य। यदि तुम उन्हें रोग से पीडित रहने देते हो, तो सारे संसार में दुर्बलता फैलने का पाप अपने सिर लेते हो। अतएव समग्र संसार के हितार्थ राम तुमसे भारत का पक्ष लेने को कहता है। सत्य और न्याय के नाम पर राम तुमसे दिलोजान से भारत का पक्ष ग्रहण करने की प्रार्थना करता है।

आप पूछेंगे, भारत पर ऐसा क्या संकट है? रोग राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक है।

भारत की राजनैतिक अवस्था

उस अन्धकारग्रस्त भूमि की दारुण राजनैतिक दुर्दशा के वर्णन में राम अधिक समय न लगायेगा। जिस देश में लाखों मनुष्य दुर्भिक्ष से मर रहे हैं, जहाँ क्षुधा और भोजनाभाव नूतन अपरिपक्व लड़कों और लड़कियों का भक्षण करते रहते हैं (अर्थात् जहाँ क्षुधा और भोजनाभाव के कारण छोटे छोटे बच्चे और नवयुवक आये दिन मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं), जहाँ गरीबी और महामारी होनहार युवकों को कलिका की अवस्था में ही नष्ट कर देती है, जहाँ नन्हा, कोमल बच्चा सूखे और मुरझाये ओठों से रोता है क्योंकि दुर्भिक्ष-पीडिता माता दूध के अभाव में उसे पाल नहीं सकती; जिस देश में मुश्किल से एक भी ऐसा आदमी है जो अपनी आय के सामने व्यय की परवाह न करता हो, जहाँ किसी तरह पेट पालना मनुष्य की सम्पन्नता समझी जाती है; जहाँ राजा और राजकुमार भी प्रायः दुखद आर्थिक झंझटों में फँसे पाये जाते हैं; जो देश अपनी शिकायतों और पीड़ाओं की चिन्ता न करता हुआ स्वामिभक्त, धीर और वीर है; ऐसी भयंकर गरीबी के देश में,

दयालु सरकार, दीनतावर्द्धक राज्य-करों के अतिरिक्त, हाँफते हुए मज़दूरों की झुलसी हुई खाल और जमे हुए खून के भीतर से करोड़ों रुपया ऐंठना अनिवार्य समझती है, केवल एक नाम और रूप की महिमा वृद्धि और अभ्युदय के लिए, कपड़ों के एक जोडे का उत्सव मानने के लिए, मांस के एक पिण्ड को देवता बनाने के लिए, जिसे वे इंग्लैंड का महाराजाधिराज मानते और जिसका अभिषेक करने में अति गर्व करते हैं। इस भयंकर और महान् तमाशे तथा दिखावे के साथ साथ मूर्खतापूर्ण फजूलखर्ची के हज़ारों छोटे-मोटे ढंग देश का शोषण कर रहे हैं, और उसके जीवन रक्त को चूस रहे हैं। अच्छी आमदनी के सभी ऊँचे ओहदे एकमात्र अंग्रेजों के हाथ में हैं। समाकुल तीस कोटि मनुष्यों का एक भी प्रति-निधि इंग्लैंड की पार्लामेंट में नहीं है। समस्त देशी उद्योगों को अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया है। भारतीय पैदावार की मलाई खा-खा कर जॉनबुल (इंगलैंड) मोटा हो रहा है। ग़रीब हिन्दू के हिस्से में सूखी भूसी और गंदे पानी के सिवा कुछ भी नहीं पडता है। समस्त देशी कला-कौशल, उद्योग-धन्धे और शिल्प क्षीण हो गये हैं। एक मात्र स्वाधीनता, जिसे लोग भोगते हैं, बल्कि एकमात्र भ्रामक स्वाधीनता जो उनके स्वास्थ्य, धन दौलत और सदाचार को नष्ट भ्रष्ट करती है—वह है झूठी आज़ादी की राक्षसी भावना—जो उन तेज अंग्रेजी शराबों और बिनाशकारी अंग्रेजी मदिराओं से उधार ली जाती है, जिनका प्रचार स्वभाव से ही नशे से परहेज़ करनेवाले भारतवासियों में खूब बढ़ाया जाता है। इन शराबों का प्रचलन अंग्रेजों ने किया है। इससे तुम्हें भारत की राजनैतिक दुरवस्था की कल्पना हो यह सकती है। दुर्गति तुम्हें उनकी बाहरी हालत बताती है।

जिन आन्तरिक मुसीबतों से वे भारतवासी कष्ट पा रहे हैं, अब उनसे राम तुम्हारा परिचय करायेगा। अब उनके पतन के भीतरी, और

असली, तथा उनकी कठिनाइयों और निराशा के भीतरी और मुख्य कारण के सम्बन्ध में राम तुम्हें कुछ बतायेगा। इस विषय पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। किन्तु सारा मामला विस्तार के साथ सुनने के लिए काफी समय लोगों के पास नहीं है, इसलिए हरेक चीज राम को संकेतवत् अर्थात् अत्यन्त संक्षिप्त रूप से कहनी होगी।

भारत के पतन की, गिराव की व्याख्या वेदान्त दर्शन यों करता है। यह अपने कर्मों की बात है। कर्म का अर्थ है कोई ऐसी चीज जो अपनी करतूतों से संघटित हुई हो। कर्म का शाब्दिक अर्थ है काम, हमारी अपनी करनी। आज जो कुछ वे काट रहे है वही उन्होंने उस दिन अपने लिए बोया था। हिन्दुओं ने भारत के आदिम निवासियों (aborigines) से जैसा बर्ताव किया था, वैसा ही बर्ताव अब वे विजयी राष्ट्रों से पा रहे है। जिस तरह हर बीमार, अपनी बीमारी का जिम्मेदार है, अज्ञानता से, अति भोजन करके, या स्वास्थ्य के नियमों को तोड़ कर, अपने को रुग्ण करता है, उसी तरह भारतवासी अज्ञानता तथा अपने ही कृत्यों के कारण बीमार हैं, रोगी है।

किन्तु बीमारी किसी तरह से आई हो, जाकर रोगी को डाटना-डपटना वैद्य का काम नहीं है। वैद्य का काम है रोगी का दिल बढ़ाना, उसे चंगा करना। रोगी को फटकार कर तुम रोग को और भी खराब कर देते हो, रोगी का रोग बढा देते हो। उनके कुकर्मों और अपराधों के लिए उन पर दोष लगाने का यह समय नही है। हमारा और तुम्हारा कर्त्तव्य उन्हें कष्टों से बाहर निकाल लेना है।

भारतीय जाति-भेद की जड़

अर्थशास्त्र हमें श्रम-विभाजन (division of labour) के बारे में बतलाता है। उद्योग धंधों के फलने-फूलने के लिए किसी कारखाने या पुतलीघर में काम का विभाजन हो जाना चाहिए। तुम्हारी अपनी देह में ही श्रम का विभाजन है। आँख केवल देखती है, सुनती नहीं।

कान केवल सुनते है, वे नेत्रों का काम नहीं करते। हाथ पैरों का काम नही करते। पैरों और हाथों को अपना अपना विशेष काम करना पडता है। यदि हम आँखों से सुनना और नाक से चलना चाहें, या यदि हम हाथों से सूँघना और कानों से भोजन करना चाहें, तो क्या यह संभव है? नही। यह तो हमें जीव-फेन (protoplasm) के विकास की प्रारम्भिक दशाओं में लौटा ले जायगा; यह तो हमें मोनक्रोन्स (Moncrons) बना देगा, जिनके केवल पेट ही पेट होता है, और अकेला पेट ही आँख, कान, नाक और पैर सबका काम देता है। यह हम नहीं चाहते। श्रम का विभाजन प्राकृतिक विधानानुसार आवश्यक है। और भारत में इस श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर ही एक समय जाति-प्रथा व्यवस्थित और स्थापित हुई थी। यह श्रम-विभाजन के सिवाय और कुछ नहीं था। एक मनुष्य ने पुरोहित का काम ले लिया था, दूसरे ने सैनिक का, क्योंकि यह दूसरा व्यक्ति अधिक लड़ाका और पशु-वृत्ति जन्य-रजोगुण प्रधान था। केवल अस्त्र धारण करने और लड़ने-भिडने तथा शत्रुओं को पददलित करने के योग्य होने के कारण, वह उपदेशक का मृदुल काम न कर सकता था। यह श्रम का विभाजन था। कुछ और लोग ऐसे थे जो कम मेहनत वाले रोजगार (जैसे दुकानदारी) के अधिक उपयुक्त थे। इनमें धर्माचार्य के काम की उतनी योग्यता नहीं थी जितनी दुकानदारी की। ऐसे लोग भी थे, विशेष कर आदिम निवासी (aborigines), जो नाममात्र को ही उन्नत हुए थे, जिन्हें कुछ भी शिक्षा नहीं मिली थी, जिन्होंने अपने बचपन और लडकपन का समय बेकार खेलने-कूदने में और आलस्य में गँवाया था। ये लोग धर्मप्रचारक का काम नहीं कर सकते थे, वे सिपाही का काम भी नही कर सकते थे, क्योंकि वे कवायद नहीं जानते थे युद्ध के लिए आवश्यक नियमबद्धता उनमें नहीं थी। वे दूकानदारी का काम करने में भी असमर्थ थे। दूकानदारी में भी कुछ विद्या और कुछ चातुर्य की आवश्यकता होती है। ये लोग साधारण

मजदूर, झाड़ूदार या सड़क पर कंकड़-पत्थर तोड़नेवाले मज़दूर का काम उठा लेने को तैयार थे। इस तरह भारत में काम चलाने के लिए चार विभाग किये गये। धर्माचार्य की जाति ब्राह्मण कहलायी, सैनिकों का काम करनेवाले लोग क्षत्रिय कहलाये, जिन लोगों ने दूकानदारी या व्यापार का काम लिया वे वैश्य कहलाये, और जिस वर्ग ने हाथ से मेहनत-मजदूरी का कार्य लिया वे शूद्र कहलाये। जिस आदमी को जो काम पसन्द हो उसे करने की कोई मनाही या रोक-टोक विषयक कोई कठोर नियम न थे। और क्या यह श्रम विभाजन सर्वत्र प्रचलित नहीं है? क्या यह श्रम विभाजन अमेरिका में प्रचलित नहीं है? अमेरिका में ये वर्ग वर्तमान है, इंगलैंड में भी मौजूद हैं, ये सब कहीं विद्यमान हैं। क्या अमेरिका में अपनी जातियाँ नहीं है? क्या अमेरिकावासियों में अपने ऊपरी दस (Upper ten) और अपने मामूली लोग नहीं हैं? सर्वत्र यह विभाग, स्वाभाविक रीति से काम करता है। फिर भारत की जाति-प्रथा ही क्यों ऐसी दूषित मानी जाती है?

भारत में इसी हिन्दू विधान पर मनुस्मृति नाम का एक ग्रन्थ लिखा गया था। उन दिनों यह पुस्तक सब श्रेणियों की सहायता के लिए बनी थी। प्रत्येक वर्ग के लिए काम चलाने के विभिन्न नियम, उपाय, उपदेश और आदेश इसमें दिये गये थे। ब्राह्मणों के सहायतार्थ सुखकर नियम-उपनियम इसमें दिये गये थे, और क्षत्रियों को अपने काम करने की विधि इससे मालूम होती थी, और इस तरह उस समय की सब श्रेणियों का काम सभालने के लिए यह पुस्तक रची गई थी। धीरे धीरे यह पोथी गलत पढ़ी जाने लगी और इसकी व्याख्या गलत होने लगी और किसी न किसी प्रकार हरेक चीज़ उलट-पुलट हो गई, प्रत्येक वस्तु स्थान-भ्रष्ट हो गई। सम्पूर्ण श्रेणीक्रम और श्रम-विभाग की यह पद्धति हड्डियों के ढाँचे की भाँति मृत शरीर या पत्थर के समान अचेतन बना दी गई। लोगों ने इसे ठोस बना दिया, उन्होंने इसे कठोर

बना दिया, जाति का जीवन-स्रोत सूखने लगा। हरेक वस्तु बनावटी और यंत्रवत् हो गई। लोगों की सेवा करने के बदले वह मनुस्मृति निरंकुश अत्याचारी बन गई।

भारतीय जाति प्रथा की अधोगति

साधारणतः किसी विश्वविद्यालय में चार दर्जे होते हैं, नवागत या प्रथम, द्वितीय, तृतीय और उच्च। ये श्रेणियाँ बहुत ठीक हैं, किन्तु अध्यापक यह नहीं चाहते कि ये श्रेणियाँ ज्यों की त्यों बनी रहें, सबसे नीची श्रेणी के विद्यार्थी उन्नति न करें। वे उससे आगे की ऊँची श्रेणी में न चढ़े और द्वितीय श्रेणी के विद्यार्थी उन्नति करके तृतीय-वर्ष की कक्षा में न जायँ और तृतीय-वर्ष की कक्षा के छात्र चतुर्थ-वर्ष की कक्षा में न चढाये जायँ। श्रेणियों का होना ठीक और उत्तम है, यह विभाग बहुत ठीक था। किन्तु भारत में जो भूल, विकट भूल की गई, जो भयंकर भूल भारत की वर्तमान अधोगति के लिए उत्तरदायी है, वह है इस विभाग को जड, स्तब्ध बना देना। इस विभाग को अचल बनाना। इसी तरह भारत की वर्तमान जाति-भेद-प्रथा का, भारत के कलंक और क्षय के कारण का उद्भव हुआ था।

मनुस्मृति के अस्थायी नियम और उपनियमों ने, जिनमें उस समय के मामलों को बर्ता गया था, और जिनका सम्बन्ध अपने समय की अस्थायी बातों से था, धीरे धीरे श्रुति या उपनिषदों और वेदान्त में प्रचारित अविनाशी सत्य के सम्मान और प्रतिष्ठा को हडप लिया। यह अनुभव करने के बदले कि "नियम और कानून हमारे लिए है," लोगों ने नियमों और कानूनों के लिए ही जीना शुरू किया। मृतकों के प्रमाणों की सत्ता बढ़ा दी गई और सजीव आत्मदेव अन्तर्यामी भगवान् की आज्ञाओं से उन प्रमाणों को कहीं ऊंचा स्थान दिया जाने लगा। मनुष्य व्यवहार रूप से केवल मांस और रुधिर, ब्राह्मण या क्षत्रिय, बन गया, और असली "आत्मा" की, नित्य "सत्यस्वरूप" की, पूरी तरह

उपेक्षा की गई। जातीय नियमों का भय, रीति-रस्म का भयंकर आतंक किसी भी व्यक्ति को एक क्षण के लिए दूसरी जातियों के लोगों से अपनी एकता बोध करने की अनुमति नहीं देता था। ब्राह्मणपन और क्षत्रिय-पन का विचार हर घड़ी इतना प्रबल बना रहता था कि मनुष्यता का विचार हृदय में घुसने ही नहीं पाता था।

मनु के समय से पृथ्वी का रूप अनेक बार बदल चुका, नदियों ने अपने पेटे बदल दिये, जङ्गल काट कर जला दिये गये, वनस्पतियाँ और लता-गुल्म आदि और के और हो गये, क्षत्रिय और वीरों की जाति एक प्रकार से भारत से बिलकुल बह गई, देश की भाषा भी देश में विदेशी हो गई, और आज-कल के हिन्दू के लिए वह वैसी ही निर्जीव और विदेशी चीज है जैसी लैटिन और ग्रीक; पर तो भी भारत के आत्मघाती आज तक जातीय रूढ़ियों (Conventionalities) के, मनु के बनाये हुए तात्कालिक नियमों और रीतियों के, अधम गुलाम बने हुए हैं। स्वाधीन विचार, स्वतंत्र चिन्तन अधर्म वरन् महा पाप समझा जाता है। मृतक भाषा से ही जो कुछ मिले, वही पवित्र है। यदि आपकी युक्ति, आपका तर्क मृत पुरुषों की कहावतों, कल्पनाओं तथा तरंगों की महिमा, अधम गुलाम की भाँति, बढ़ाने में तत्पर नहीं तो तुम नरक के योग्य हो, प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे विरुद्ध हो जायगा। तुम्हें नई शराब को पुरानी बोतलों में रखना चाहिए। सब काम श्रेष्ठ हैं, सब श्रम पवित्र हैं, किन्तु जाति-भाव के विपर्यय से सम्मान और अपमान अब बाहरी व्यापारों में जुड़ गये है। जो लोग अपनी लड़क-पन की आयु शिक्षा पाने में नहीं लगाते, उन्हें युवावस्था में कठिन शारीरिक श्रम करके अपने पिछले आलस्य का बदला चुकाना पड़ता है। अपनी पिछली सुस्ती की कीमत उन्हें एड़ी चोटी का पसीना बहाकर देना पड़ती है। उनके श्रम को नीच कहने या शूद्र-कर्म को तुच्छ समझने का हमें क्या अधिकार है? क्या उस श्रेणी का श्रम ठीक उतना ही आवश्यक नहीं जितना कि एक धर्मगुरु, सैनिक या वैश्य का काम?

आजकल मामला यहाँ तक बिगड़ गया है कि नीच जाति के लोग उस सड़क पर नहीं चलने पाते जिस पर उच्च जाति के लोग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, या वैश्य चलते हैं। जिन आदरणीय ग्रामों या नगरों में उच्च जातीय लोग बसते है, उनसे बाहर टूटी-फूटी झोपड़ी में शूद्रों को रहना पड़ता है। यदि किसी ऊँचे जाति के आदमी पर किसी छोटी जाति के आदमी की छाया पड जाती है, तो उस उच्च जातीय व्यक्ति को अपनी निर्मलता के लिए नहाना-धोना पड़ता है। नीच जाति के आदमी द्वारा कोई चीज यदि छू ली जाती है, तो वह चीज गन्दी, छूत हो जाती है। वह चीज़ फिर किसी उच्च जाति के मनुष्य के काम की नही रह जाती। नीची जातियों के लोगों को अत्यन्त नीच और कठिन श्रम करने के इनाम में जो छिलके और टुकडे उच्च जाति के लोगों से मिलते है उन्हीं पर छोटी जाति के लोगों को निर्वाह करना पडता है। राम को आप क्षमा करेंगे, यदि आपके सामने तथ्य रखने के लिए राम को लाचार होकर ऐसे शब्दों का सहारा लेना पड़ता है जिन्हें सुनने का आपको अभ्यास नही है। इन नीच जाति के आदमियों को, इन शूद्रों या पारहियों को सड़कों पर झाडू देनी पडती है, गन्दी नालियों को अपने हाथों से रगडना और साफ करके चमकाना पडता है। इतना ही नहीं, बल्कि पेशाब के हौदों को भी उन्हें साफ करना पडता है, और इस श्रम के इनाम में उन्हें मिलते है केवल बासी टुकडे और छिलके। वे अमीर नही हो सकते, वे अत्यन्त गरीब हैं। उनकी दशा का ध्यान आते ही राम के दिल में एक शूल उठता है। नीच जाति के लडके उन पाठशालाओं में प्रवेश नही कर सकते जिनमें उच्च जातीय लड़के शिक्षा पाते हैं, क्योंकि उनके वहाँ बैठने से उच्च जातीय लडके नापाक हो जायँगे। ऐसी स्थिति में ये पददलित लोग कैसे कोई शिक्षा पा सकते हैं, जबकि ये किसी तरह आधे पेट खाकर जीते हैं, और कुत्तों की मौत मरते हैं। भारत सब प्रकार की महामारियों और रोगों का प्रिय अड्डा है। अस्वास्थ्यकर स्थानों में रहनेवाले ये गरीब शूद्र सब तरह के रोगों और

स्पर्शजन्य महामारियों के शिकार होते हैं, मानो वे उदारता-पूर्वक हैजा, महामारियों और दुर्भिक्षों को भर पेट अपना शरीर खिलाने के लिए निमंत्रित करते हैं। गरीब, नीच रहकर भी ये सदा समाज के पैर, बुनियाद, और सहारा बने हुए है। जो घमंडी समाज नीची जातियों की बाढ़ को रोकता और दबाता है, जो समाज दीन-हीन अशिक्षितों को शिक्षा नहीं देता और उनसे बुरा बर्ताव करता है, वह समाज अपने ही पैर काटता है, वह समाज टूट फूट कर गिर जायगा।

ये नीच जाति के लोग अधिकांश में भारत के आदिम निवासी (aboriginal inhabitants) थे। आर्यों ने, जिन्हें आप आज हिन्दू कहते है, भारत के मूल निवासियों को जीता और उन्हें इस अत्यन्त नीच, अधोगति में डाल दिया। इन्होंने उनकी यह दुर्दशा कर डाली। उन्होंने एक महापाप किया, और आज जो कुछ वे काट रहे हैं, वह उन्ही का बोया है। भारत के मूल निवासियों के प्रति व्यवहार के रूप में हिन्दुओ या आर्यों ने वही बोया था जो आज मुसलमानों और भारत के वर्तमान शासक अंग्रेजों के हाथों वे पा रहे है। यही "कर्म" या "प्रति-फल" का दैवी विधान है।

राम तुमसे एक हिन्दू भारतवासी, अथवा किसी जाति या वर्ग के व्यक्ति की हैसियत से कुछ नहीं कह रहा है। राम की स्थिति सत्य पर है। राम का शरीर भारत की सर्वोच्च जाति का है, और राम संसार की अति नीच पददलित जाति की ओर से आपसे विनय कर रहा है। सत्य और न्याय के नाम पर, "असली आत्मा" के नाम पर जो भारत के अन्त्यजों का भी आत्मा है, साम्प्रदायिकता और परस्पर भेदभाव के सब पर्दे और घूँघट हटा दीजिये और भारत के पीडित लोगो का पक्ष लीजिये।

यह जाति-भेद या श्रम-विभाजन समग्र राष्ट्र के पतन का साधन क्योंकर बन रहा है? मूल में तो श्रम का विभाजन और प्रेम की रक्षा

करना इसका अभिप्राय था। किन्तु भारतीय जाति प्रथा में ये सब चीजें उलट-पुलट गई हैं, गाड़ी घोड़े के आगे जोत दी गई है। इन दिनों वहाँ प्रेम और एकता का तो विभाग है तथा प्राचीन कर्मों और भेदों का संरक्षण है। किन्तु होना चाहिए था इसके विपरीत। परिवार के एक व्यक्ति को जो कपड़े अनेक वर्षों पूर्व ठीक बैठते थे, वही उसे आज भी पहनने पड़ते हैं, जब कि उसके हाथ-पैर और हड्डियाँ पहले से बढ़ चुकी हैं। इस प्रकार, चीन देश की महिलाओं के पैरों की तरह, हिन्दुओं की बुद्धि तंग साँचों और कठोर जूतों और सलूकों में दबाकर रक्खी जाती है। किसी हिन्दू की कट्टर शिक्षा दो दीवालों के बीच दौड़ने के समान है।

एक आदमी दो रोगों से बीमार था। उसकी आँखें आ.ई थीं और पेट दुखता था। उसने वैद्य को अपनी तकलीफ सुनाई। वैद्य ने उसे दो दवाइयाँ दीं, एक पेट के लिए और दूसरी नेत्रों के लिए। किन्तु इस रोगी ने दोनों को मिला दिया। पेट के लिए जो औषधि थी उसमें काली मिर्चें, नमक और कुछ और ऐसी ही गर्म-गर्म चीजें, उसके पेट को दुरुस्त करने के लिए पड़ी हुई थीं, और नेत्रों के लिए जो दवा थी उसमें सुरमा और जस्ता और ऐसी ही कुछ चीजें थीं। हम जानते हैं कि सुरमा खाने में ज़हरीला होता है। इसी प्रकार दूसरी चीजें, मिर्च और नमक आदि, खाई तो जा सकती हैं पर आँखों में नहीं लगायी जा सकतीं। इस आदमी ने दोनों चीजें लौट-पौट दीं, जो वस्तु नयनों में लगाने को थी वह उसने खा ली, और खाने वाली औषधि आँखों में लगा ली। लो, आँखों और पेट दोनों की की पीड़ा बढ़ गई। ठीक यही भारत में हुआ है। श्रम में विभाग होना चाहिए था, किन्तु चित्त में एकता और सामंजस्य। पर बदनसीबी और नासमझी से प्रेम और चित्त में विभाग है और बाहरी कर्त्तव्यों को सुरक्षित रखने की चेष्टा की जाती है।

रीति और रिवाज (Custom and Conventionality) के दैत्य ने जाति के सम्पूर्ण जीवन और मौलिकता को मानो कंकड़ और पत्थर-वत् जड़ बना दिया है। कट्टरता का अर्थ अब बिलगता (exclusivism) निराशावाद (Pessimism) और मूक रूढ़िवाद स्थिति-पालकता (dumb-conservatism) हो गया। असली जिन्दगी में, ऊँची जाति के आदमियों ने "असली" आत्मा की भीतरी "स्वर्ग" की महिमा और प्रताप को भूल कर आत्मा को, वेदान्त को, अपने पैरों तले कुचल डाला है, और मूर्खतापूर्वक अपने सांसारिक वैभव, शान-शौकत और व्यक्तिगत सफलताओं पर गर्व करना शुरू किया है। उसे अपनी प्रतिष्ठा या गौरव बनाये रखने की चिन्ता हुई, तथा व्यक्तिगत सम्मानों एवं स्वार्थ-पूर्ण अभिवृद्धि की लालसा और फिक्र उसके सिर सवार हुई। "मुहरों की लूट और कोयलों पर मुहर" वाली नीति अन्त में उच्च जाति के मनुष्य की अवनति और साथ ही साथ नीच जाति के जन समूह के विनाश का कारण हुई। ऊँची जाति का मनुष्य बाहर से फूला-फूला दिखाई देने लगा और उसके दर्प तथा अज्ञान की और भी वृद्धि हुई।

अब इस बुराई को हम कैसे दूर करें ? क्या हमें इन हिन्दुओं और आर्य्यों को कुचलना शुरू करना चाहिए, क्योंकि इन्होंने शूद्रों के साथ ऐसी निठुरता की थी ? क्या इससे बात बन जायगी ? नहीं, नहीं। किसी गवैये को सबसे बड़ा दण्ड आप यही दे सकते हैं कि उसकी गलती बता दें और भूल सुधार दें। किसी पापी या बदमाश को सबसे कठिन दण्ड आप यही दे सकते हैं कि उसे शिक्षा दें, उसकी मूढ़ता को नष्ट कर दें। यदि आप उसकी पापवृत्ति को मार डालना चाहते हैं, तो उस पापी को मार डालने की जरूरत नहीं। पापी में अज्ञान है। उसे सिखाइये-पढ़ाइये, उसकी अविद्या दूर कीजिये। सारा मामला इस तरह आप ही आप दुरुस्त हो जायगा। दोष-निवारण का, अज्ञान-रूपी रोग के कीटों के विनाश का बस यही ठीक उपाय है।

आर्य और हिन्दू काफी दुःख भोग चुके हैं। मूल-निवासियों पर की हुई निठुरता का बदला लेने के लिए, उनसे नाराज़ होने के लिए यूरोप या अमेरिका से आपको जाने की ज़रूरत नहीं है। वे अपने किये की क़ीमत खूब चुका चुके। सदियों से वे विदेशी जुए के नीचे है, गुलामी में सड रहे हैं। अफ़गानिस्तान के लोगो ने देश पर चढ़ाई की और उन्हें पराजित किया। यूनान के लोग आये और उनको सताकर चले गये। ईरान के लोगों ने उन पर प्रभुता जमाई। दुनिया के सब हिस्सों से लोग आये और उन्हें सताया धमकाया। यहाँ तक वे अपने क़सूरों के महँगे दाम दे चुके हैं। अब यह समय है कि आप जाकर उन्हें ढाढ़स दें। अब यह समय है कि आप जाकर उनका दिल बढ़ावें। अब समय है कि आप जाकर उनका वेदान्त-विरुद्ध अज्ञान दूर करें जिसके कारण वे जाति-भेद की प्रथा से चिपटे हुए हैं।

जाति-भेद की इस कल्पना के कारण कैसे बुरे और शोचनीय ढंग से उनकी शक्तियाँ क्षीण हो रही है। उनके उद्योग-धंधे नष्ट हो रहे है। दलबन्दी की भावना से उनका व्यापार—आचार-विचार, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक व्यवहार—नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। भारत की यह जाति-प्रथा विरोध और जातिगत विद्वेष पैदा करती है। कल्पना कीजिये कि एक आदमी दर्शन-शास्त्र पढ़ता है अथवा इतिहास या कोई और विज्ञान शास्त्र का अध्ययन करता है। यदि उसका चित्त उद्विग्न है तो वह अपना अध्ययन कायम रखने में असमर्थ होगा। शिक्षा प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा चित्त निश्चिन्त हो। वह कौन सी वस्तु है जो लोगों को विचलित कर देती है? क्योंकर वे व्यग्र और डाँवाडोल होते हैं; भेद-बुद्धि से। जब तुम सजातीय• समविचारवालों के साथ रहते हो. तब कोई भेद नहीं होता, तब तुम्हारे समीप कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं होता; तब तुम सफलता पूर्वक पढ़ सकते हो; किन्तु जब तुम विरोधी तत्त्वों, विपरीत भावनाओं से, घिरे हुए हो, तब तुम कुछ नहीं

कर सकते, तब तुम पढ़ नहीं सकते। ज़रा खयाल कीजिये। यदि मेरे कुटुम्बी, मेरे भाई-बहनें और दूसरे सम्बन्धी मेरे आस-पास हों, तो मैं पढ़ने में लगा रह सकता हूँ, मेरे काम में विघ्न न होगा। किन्तु जब कोई ऐसा तत्त्व आ जाता है, जो तत्त्व विजातीय समझा जाता है, ऐसा तत्त्व जो गैर माना जाता है, जो मेरे चित्त में क्षोभ उत्पन्न करता है, तभी मैं खिन्न हो उठता हूँ। भारत की यह जातीय प्रथा, आस-पास के पदार्थों को विजातीय बना देने के कारण, बुद्धि की शक्तियों को हानि पहुँचाती है, और लोगों को यह विश्वास कराके कि "हमारे आस-पास के स्त्री-पुरुष सभी गैर, विदेशी, और भिन्न है", राग-द्वेष, ईर्ष्या और फूट की भावना पैदा करके, चित्त में अशान्ति उत्पन्न करती है। चार तो बड़ी जातियाँ हैं, और ये चारों सैकड़ों उपजातियों में विभक्त हैं और लक्षण या कुलक्षण यह है कि यह संख्या अनन्त होती जा रही है। इसके साथ ही मुसलमानी एक दल या जाति है, ईसाईयत दूसरा दल वृद्धि पर है। थियासोफी (Theosophy), आर्यसमाज और हजारों दूसरी नई नई बरसाती मच्छरों के समान बढ़ते हुए समाज, जिनके चटकीले-भड़कीले नाम हैं, नये-नये भेद पैदा कर रहे हैं। मुसलमानों के आजाने पर हिन्दू विद्यार्थी की स्थिरता भङ्ग हो जाती है, यदि घटनास्थल पर एक ईसाई पहुँच गया, तो हिन्दू और भी विचलित हो जाता है। यदि मान लीजिये कि कोई भिन्न जाति का हिन्दू आ गया तो उसकी उपस्थिति से भी कट्टर हिन्दू विद्यार्थी का चित्त छायाग्रस्त हो जाता है।

क्या तुम यह नहीं देखते कि यह जाति-प्रथा और यह भेद-भाव, जिसकी भारत में अति हो गई है, विकास की शक्तियों की यथोचित उन्नति नहीं होने देता? इसके मारे वे अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाते। अतः भारत में हमारे शिक्षा के काम के अभ्युदय के लिए हमें लोगों को ऐसी दशा में लाने का प्रयत्न करना चाहिए,

जिसमें उनके चित्त शान्त रह सकें। और उनके चित्त तभी निश्चिन्त हो सकते हैं जब यह अस्वाभाविक भेद भाव मिट जाय और जाति-भेद की भावना दूर कर दी जाय।

राम यह नहीं कहता कि आप अमेरिका वाले जाति से बिलकुल मुक्त है। आप मुक्त नहीं है। यदि आप ईसाई है और आप एक हिन्दू या बौद्ध को नहीं देख सकते, तो यह क्या है? यह भी जाति है। यदि आप अमेरिकावासी हैं और आप एक स्पेनवासी या अंग्रेज को नहीं देख सकते, तो आप राजनैतिक जाति से पीडित हैं। यदि आप गोरे है और एक हबशी के साथ एक ही कमरे में आप काम नहीं कर सकते, तो सामाजिक जाति का भूत आप पर सवार है। आप जाति से बिलकुल मुक्त नहीं हैं, यदि आप को अपने पडोसी या प्रतिद्वन्द्वी से ईर्ष्या है। ईर्ष्या क्यों होती है? जाति, केवल जाति ही इस मत्सर का कारण है। यदि आप अपने साथी की प्रशंसा अपने सामने होते नहीं सह सकते, तो आप जाति-पीड़ित हैं। अमेरिका मे अधिकतर सर्वशक्तिशाली रुपया जाति का निर्णय करता है। अमेरिका में अनेक सामाजिक दोष हैं। अमेरिका को अपनी आँख का टेट देखने की ज़रूरत है। अमेरिका को सुधार को ज़रूरत है। अमेरिका की सामाजिक पद्धति सर्वांग सुन्दर नहीं है। अमेरिका को वेदान्त की भावना की बड़ी ज़रूरत है। किन्तु भारत की दशा कई गुणा अधिक ख़राब है। अमेरिका की जाति चलायमान, कोमल, लचीली है, जैसी हरेक जीवित वस्तु दुनिया में होनी चाहिए। किन्तु भारतीय समाज बिगड़ी घड़ी के तुल्य है, लकड़ी और हठीली, अमेरिका के शहरों के नीरस मालगोदामों में रक्खे हुए मोम के पुतलों की भाँति अचल-मुख और अडोल-वस्त्र। वंशपरम्परा-क्रम और कालानुवर्तन या शिक्षा के सिद्धान्तों (principles of heredity and adaptation or education) पर जीवन विकसित होता है, जीवन के निम्नतर वर्गों में वंशपरम्परा का नियम (principle of

heredity) सर्वप्रधान है। मनुष्य अपनी शारीरिक शक्तियों और अंगों के लिए वंशपरम्परा के सिद्धान्त का ऋणी है, किन्तु मनुष्य उन्नति करके अपनी अत्यन्त विशुद्ध, पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त कर सकता है, विशेषतः कालानुवर्तन (adaptation) और शिक्षा के द्वारा। मुर्गी के बच्चे जब अण्डों से निकलते हैं, तब उनमें उनके माता-पिता की सारी समझ आ जाती है। कुछ पक्षी पैदा होते ही अपने पूर्वजों की तरह मक्खियों को चोंच से पकड़ने लगते है। वे अपनी प्रायः सारी शक्तियाँ अपने माता-पिता से प्राप्त करते है, और यथार्थ में उनकी वृद्धि और उन्नति का अन्त भी उसी में हो जाता है। इसके विपरीत मनुष्य का उत्कर्ष होता है, मुख्यतः कालानुवर्तन (स्थिति अनुकूलता) और शिक्षा के द्वारा उन्नति करता है। सुन्दर नन्हा सा शिशु उतना ही नासमझ और अनाडी होता है जितना कि दुधमुँहा पिल्ला, बल्कि पिल्ला कुछ बातों में नन्हें आदमी की अपेक्षा अधिक चतुर होता है। बस, मनुष्य और पशु में बड़ा भेद यह है कि पिल्ले को अपनी पूर्णता के लिए जिन चीजों की ज़रूरत है वे सब उसे वंशपरम्परा के कानून के अनुसार प्राप्त हो जाती हैं, और मानव-शिशु शिक्षा और कालानुवर्तन के द्वारा सारे संसार पर हुकूमत कर सकता है। हिन्दुओं ने भारी भूल यह की है कि शिक्षा और कालानुवर्तन के कानून के गुण से मनुष्य को वञ्चित कर दिया, और वंशपरम्परा द्वारा प्राप्त शक्तियों को विकसित और उन्नत करने के लिए उसे इस प्रकार बाध्य किया है कि हिन्दू समाज पर केवल वंशपरम्परा का सिद्धान्त काम करने लगा। फल-स्वरूप नर नारी पशुओं और वृक्षों की श्रेणी में आ गये। कार्यतः वे आत्मा की अनन्त शक्तियों में विश्वास नहीं करते। वे विश्वास नहीं करते कि शूद्र शिक्षा के द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है। वे शूद्र के लड़के को शूद्र और वैश्य के पुत्र को वैश्य ही बनाये रक्खेंगे, क्योंकि उनके कथनानुसार, अंजीर का पेड़ अंजीर ही के बीज पैदा करता है, और कुत्ता केवल

कुत्ते ही को जन सकता है। यह उनकी बहस है और इसे वे, नित्यप्रति के तथ्यों की भयंकरता के सामने जो साफ साफ और सरलता से उन्हें झूठा सिद्ध करता है, पुष्ट करते रहते हैं। पूर्वकाल के उत्कृष्ट विचारवानों और महामान्य ऋषियों और विचक्षण तत्वज्ञानियों तथा सिद्धों के पुत्र—निस्संदेह सब ब्राह्मण ऐसे ही है—यदि अधिकांश पागल नहीं, तो क्या शिक्षा और उत्कर्ष के अभाव से खल और मूढ़ नही हो गये हैं? दूसरी ओर, अपेक्षाकृत असभ्य तथा क्रूर एवं अनुन्नत लोगों की सन्तति, जैसे कि अंग्रेज और अधिकांश दूसरे यूरोपियन है, क्या शिक्षा के प्रभाव और कठोर स्वच्छन्द श्रम से, शारीरिक, मानसिक और राजनैतिक शक्तियों के शिखर पर नहीं पहुँच गये हैं? ईश्वर किसी व्यक्ति, समाज या जाति का आदर नहीं करता। जो श्रम करता है वह विजय-श्री से विभूपित होता है। जो अपने को शिक्षित और ज्ञान लाभ करता है, वही मैदान जीतता और गौरव पाता है।

राम यह नहीं कहता है कि तुम जाति-भेद से बिलकुल मुक्त हो। किन्तु भारतीय तुमसे अधिक जाति-भेद से पीड़ित हैं। बहुतेरे भारत वासियों की अपेक्षा तुम अपने को अधिक सरलता से चंगा कर सकते हो। तुम कुछ बातों में हिन्दुस्तानियों की अपेक्षा राम के अधिक नगीची हो। राम चाहता है कि स्वाधीनता के इस भाव को तुम अपने में अधिक बलवान् करो, इसे जगाते रहो, इसे बढाते रहो, इसे बढ़ाओ और विस्तृत करो, इसे अधिकाधिक उन्नति दो और भारतवासियों में भी स्वाधीनता की यह भावना जगा दो, और उन्हें भी अपने इस सुख और सौभाग्य का साझीदार बना दो। इस प्रकार से दोष के मूल पर हम प्रहार करेंगे। द्वैत के द्वारा, इस भेद के द्वारा, जो वेदान्त का वैरी है, जो वेदान्त का प्रतिकूल ध्रुव है, लोग शारीरिक, मानसिक वा आध्यात्मिक आत्मघात करते रहते हैं।

इस रोग के सम्बन्ध में कुछ शब्द और कहे जायँगे। ब्राह्मण वर्ग,

शारीरिक श्रम करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता है। उच्च श्रेणी के लोग ऐसे किसी काम में अपना हाथ न लगने देंगे जिसे रीति-रिवाज या व्यवहार ने उनकी मान-मर्यादा के अनुकूल न ठहराया हो। उदाहरण के लिए, एक ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य तीन ऊँची जातियाँ-चमार, नाई, मल्लाह, लोहार, रंगरेज, दर्जी, बढ़ई, जोलाहा, कुम्हार, रंगसाज़ या मामूली मजूर का काम, मेहतर के काम का तो ज़िक्र ही बेकार है, कदापि, कदापि न करेगा। ये लोग मर जाना पसंद करेंगे, पर ऐसा काम न छुएँगे। वे चमड़े या खाल का व्यापार कभी न करेंगे। अब यदि ऊँची जातियाँ, जिनके पास कुछ पूँजी है, इन व्यापारों को नहीं कर सकतीं और नीचतम वर्ण के ऊपर, जिसके पास रुपया-पैसा नहीं है, इन व्यापारों को पूरी तरह से छोड़ दिया जाय, तो बताइये, भारत के उद्योग-धन्धों और कला-कौशलों की उन्नति कैसे होगी? उपयोगी कारीगरियों में वे कोई उन्नति कैसे कर सकते है? अमेरिका आज अपने उद्योग-धन्धों की बदौलत धनी है। इङ्गलैंड और अन्य यूरोपीय राष्ट्र अपने उद्योग-धन्धों की बदौलत धनवान है। अमेरिका और यूरोपीय देशों में पूँजी वाले लोग इन उद्योग-धन्धों को करते हैं। उस राष्ट्र के लिए क्या आशा हो सकती है जिसके तीन-चौथाई से अधिक लोग उद्योग-धन्धों को तुच्छ समझते और श्रेष्ठ कर्मों से घृणा करते हैं, जो गत बातों तथा रीति-रस्म के ठूँठ में लता समझकर लिपटे रहने को ही धर्म कहते है।

गुलाम की तरह अतीत काल के साथ चिपटे रहने, और केवल मुर्दों की आँखों से देखने का यह स्वाभाविक फल हुआ है कि हिन्दुस्तान में और भी अनेक दोषों का, जिनके बयान की इस समय ज़रूरत नहीं है, दौर-दौरा है। गुजरे ज़माने की दुःखद रीतियों का ऐसा ठोस बोझ जब तक उनके सिर पर लदा है, तब तक उनसे क्या आशा की जा सकती है? अपने पूर्वजों की एड़ियों के, नहीं नहीं, केवल उनके नामों

के भार के नीचे दबे रहने के स्थान में, उनके कन्धों पर खड़े होने में, ऐ अमेरिका वासियो ! उन भारतवासियों की सहायता करो । आज तो इन भारतवासियों का श्रेष्ठ उत्तराधिकार ही उनका भोक्ता और प्रभु है । इसके बदले में इन्हें उसका भोक्ता और स्वामी बनने में सहायता पहुँचाओ । ऐसा करो कि उनका उत्तराधिकार उनकी वस्तु बने, न कि वे अपने उत्तराधिकार की वस्तु बने रहें । उनकी सामाजिक रीतियों और चाल-ढाल निस्संदेह कुछ प्रशंसा के योग्य बातें और आशाजनक लक्षण भी हैं किन्तु उन ढंगों और रीतियों का अन्धाधुन्ध पालन उन्हें बेकार और निर्जीव बना देता है ।

भारत में पन्द्रह करोड़ स्त्रियों में से (यह संख्या अमेरिका की समग्र आबादी से दूनी है) कठिनाई से सैकडा पीछे एक स्त्री अपना नाम लिख सकती है । भला, ऐसी दशा में भावी सन्तानों में निकृष्ट अन्ध विश्वास और दीनता (कायरता) के भावों का सञ्चार न होगा तो क्या होगा !

उपनिषदों और महा तेजस्वी वेदान्त की शिक्षाओं का स्थान एक प्रकार के रसोई-धर्म ने, अर्थात् भोजन और भोजन करने के तरीकों के प्रति अनुचित ध्यान ने, ले लिया है । कुछ सर्वश्रेष्ठ कट्टर विद्वानों (पण्डितों) की विद्या का क्षेत्र पुरानी संस्कृत (जो अब कहीं नहीं बोली जाती) के व्याकरण सम्बन्धी नियमों की यांत्रिक पारदर्शिता (mechanical mastery) से आगे नहीं बढ़ता । संस्कृत रटना और पुराने ग्रन्थों के मन्त्रों का उदाहरण देना वहाँ समस्त मौलिक विचारों और स्वच्छन्द तार्किकों से श्रेष्ठ बना देता है । जैसे अपने साथियों की शीलहीन रसिकता को तृप्त करने के लिए यदि आप वैदिक मन्त्रों को तोड़ मरोड़ सकते हैं, तो आप बहुत बड़े विद्यानिधान हैं । अनेक युवकों की मानसिक शक्तियाँ "हाथ-पैर धोने के समय मनुष्य को कितनी बार कुल्ला करना चाहिए" इस प्रकार के जटिल प्रश्नों पर शास्त्रार्थ और तर्क-वितर्क करने में नष्ट और निछावर हुआ करती हैं ।

तंग साम्प्रदायिक घेरों के अन्दर घिरे रहने के कारण और ग्रन्थ-प्रमाण पर भरोसा रखने से वे ज्ञानशून्य पक्षपात की ऐसी गहराई में डूब गये हैं कि क्षुद्रातिक्षुद्र वस्तुएँ, निरर्थक चिह्न गहरे भावों के केन्द्र बन गये हैं। भारत के लोकप्रिय धर्म में गौ के लिए पराकाष्ठा का सम्मान आज एक अत्यन्त गुरु और परम गम्भीर बात है। हिन्दू धर्म के कुछ दल एक दूसरे से इतनी दूर छिटके हुए हैं जैसे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव, किन्तु गौ के लिए अतिशय आदर सब सम्प्रदायों में एकसा है। गौ के देह की पवित्रता सामान्य रूप से हिन्दू की एक अत्यन्त प्रिय और निकटतम भावना एवं एक अत्यन्त दुलार भरा आग्रह है। इस विषय को स्पर्श करते ही आप तुरन्त हिन्दू की गम्भीरतम चित्तवृत्ति और महा भयंकर रोष उत्तेजित कर सकते है और यह मार्मिक प्रश्न नित्य अनेकों झगड़ों और बखेड़ों का कारण हुआ करता है। सन् १८५७ का महा विप्लव गौ के नाम पर किया गया था। कहा जाता है कि हिन्दू के इस प्रिय अन्धविश्वास से लाभ उठाकर मुसलमानों ने पहली भारत-विजय की थी। मुहम्मद गोरी ने पहली बार जब भारत पर चढाई की, तब वीर हिन्दू राजपूतों ने उसे मार भगाया। किन्तु उसने लौट कर फिर भारत पर चढाई की। इस बार उसे हिन्दू-हृदय की तरंगों तथा व्यसनों का यथेष्ट ज्ञान हो गया था। कहा जाता है कि उसने अपनी सेना के चारों ओर गौओं की कतारों का घेरा बनाया। कैसा विचित्र आश्रय उसने लिया? हिन्दू गायों पर आक्रमण नहीं कर सके। पवित्र गौ पर भला वे कैसे हथियार उठा सकते थे? पवित्र मृदुल गौओं को देखकर दयालु हिन्दू हिचक कर रह गया, उन पर उसने वार नहीं किया, और देश को खो दिया। और परिणाम यह हुआ कि कई सदियों तक और आज भी निर्दयी विजेताओं के द्वारा उसने हजारों, नहीं नहीं, लाखों और करोड़ों गौओं का वध और भक्षण होने की पीड़ा भोगी और भोग रहा है। यह कहानी चाहे झूठी हो, किन्तु ऐसी

विलक्षण घटना आज भी सम्भव है। प्राचीन धर्म के नाम पर कैसा घोर अज्ञान फैला हुआ है *। ....

....

अरे, वेदान्त की वह बेझिझक निर्भीकता, वह निर्द्वन्द्व शौर्य कहाँ है, कृष्ण ने जिसका एक बार प्रचार किया था, जो गौओं, चीटियों और अंजीर के वृक्षों के शरीरों पर पवित्र भावनाओं को नष्ट करने के बदले, हमें न केवल उस तुच्छ शरीर की, जिसे हम "अपना निजी" कहते हैं, कातर सेवा से ही मुक्त करता है, वरन् जो हमें उस सम्पूर्ण निर्बल करने वाली अविद्या से भी बचाता है जिसके कारण हम पिता, चाचाओं, बाबाओं शिक्षकों और नातेदारों के शरीरों को अनुचित महत्त्व प्रदान करते हैं। आवश्यकता है उस आनन्दमय वेदान्त की, जो अविनाशी तत्त्व, सत्य आत्मा का, इस सीमा तक अनुभव कराता है कि यदि सैकड़ों सूर्य विनष्ट कर दिये जायँ और कोटियों संसारों का प्रलय हो जाय, तो भी ज्ञाता विचलित न हो। ऐसे व्यक्ति ही प्रबल बुद्धिवाले हैं, वही प्रबल शरीर वाले हैं, वही अध्यात्म में भी प्रबल हैं।

जल गणित या जलस्थिति विद्या (Hydrostatics) में आपने "परिणामभूत दबाव" (resultant pressure) और "समग्र दबाव" (presure total) के बारे में पढ़ा होगा। किसी किसी शरीर पर कुल दबाव चाहे अत्यधिक, अत्यन्त अधिक और आश्चर्यजनक हो, किन्तु परिणामभूत दबाव अर्थात् लब्ध दबाव शून्य भी हो सकता है। भारत में विपुल कोटि मनुष्यों की महान् शक्तियाँ साथ मिलकर काम नहीं करतीं, परस्पर सहयोग नहीं करतीं, एक शक्ति दूसरी को व्यर्थ कर देती है, एक शक्ति दूसरी शक्ति के भार के विरुद्ध खड़ी होती

* इस स्थल पर स्वामी जी ने यजुर्वेद शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्य—कोपनिषद, छठे अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मणान्तर्गत गो मेध की आज्ञा का उदाहरण दिया है, जिसके गलत समझे जाने की संभावना देखकर उसे जान बूझ कर यहाँ नहीं दिया गया। (सम्पदक)

है, और फलतः परिमाणभूत राष्ट्रीय शक्ति कुछ भी नहीं हो पाती। बाहरी रीतियों और रूपों को मूढ़ विश्वासमूलक केन्द्र बना लेने से, रस्मों और वाह्य शरीरों में भावनाओं की अन्धी भक्ति करने से, और देखने मात्र से, रूपों वा आकारों की सत्यता तथा परिस्थितियों की कठोरता में मूढ अचल विश्वास जमाने से, जाति विद्वेष, साम्प्रदायिकता, दलबन्दी की वृत्ति और जाति गत भेद-भाव इस दर्जे पर पहुँच गये हैं कि लोग अपनी अभिरुचियों को एक साथ नहीं जुटा सकते, और न वह चमत्कारपूर्ण सक्रिय वेगवती शक्ति ही पैदा कर पाते हैं, जो वाह्य भेदों के होते हुए भी, भीतर की एकता और अभिन्नता के व्यावहारिक अनुभव से सदा किसी राष्ट्र को मिलती रहती है। और जनसमूह में व्यवहृत असली वेदान्त के इस अभाव ने भारत को भीतर के भेदों से छिन्न-भिन्न करके एक फूट भरा घर बना दिया है। अनेक दलों में परस्पर बड़ा वैमनस्य है।

भारत का यही कलंक है, और राम यह नहीं छिपाना चाहता कि अंग्रेजी सरकार इस भेद-भाव को और भी बढ़ाती है। शासकों की यह "आपस में लड़ाकर जीतने" की नीति (The "Divide and Conquer" policy) हिन्दू और मुसलमानो के बीच के भेद की खाई को चौड़ा कर रही है, और इसी तरह हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच में भी फूट डाली जा रही है। यदि भारत की किसी तरह की राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, अथवा किसी प्रकार की भी—रक्षा करनी है तो उसी प्रकार के उत्कर्ष के द्वारा हो सकती है जो भेद और फूट को दूर करे, जो जाति-विभेद की खोपड़ी पर ठोकर लगाये, जो ईर्ष्या और प्रमाद पर मार्मिक चोट करे। यदि हम चाहते हैं कि भारत उठ खड़ा हो, जीवन सम्पन्न हो, दूसरे राष्ट्रों के मुकाबले में बाजी मार सके, इंगलैंड, अमेरिका तथा समग्र संसार के लिए सभी कल्याण का हेतु बने, तो इन सभी दोषों को भारत से निर्मूल करना होगा। यदि कोई

आदमी बीमार है तो केवल वही दवा देकर हम उसे चंगा कर सकते हैं जो उसकी आन्तरिक प्रकृति को सहायता पहुँचाये और उसे बल दे। भीतरी प्रकृति ही हमें नीरोग करती है, दवाइयाँ तो बाहरी सहायता मात्र हैं। वे प्रकृति को सहायता पहुँचाती हैं और प्रकृति स्वयं हमें चंगा करती है। इसी तरह, यदि भारत को फिर से स्वस्थ करना है, तो तुम्हें कोई ऐसी वस्तु उसे देनी होगी जो उसके आन्तरिक जीवन-तत्व को बलवान् बना दे, जो उसकी भीतरी प्रकृति को अनुप्राणित और शक्तिमान् करे।

भारत का रोग और कठिनाइयाँ आपको बता दी गईं। अब हम उन विभिन्न औषधियों पर विचार करेंगे जो रोग-निवारण के लिए बतायी गई हैं।

संसार समझता है, बहुत से धर्मों और मतों का भी विश्वास है, बहुत से सदाचार के आचार्य भी प्रत्यक्ष पुष्ट करते हैं कि उपदेश और नियम इन सभी दोषों को दूर कर देंगे। कदापि नहीं! कदापि नहीं!! कदापि नहीं!!! शास्त्रोपदेश विहित कर्म वा अवश्यमेव पालनीय सिद्धान्त, आचरण के कृत्रिम नियम और अस्वाभाविक सदाचार कभी इन दोषों को दूर न करेंगे। याद रखो कि, "तू यह न कर" और "तू वह न कर" से कभी कोई सुधार न होगा। यदि ये नियम और नेक सलाहें दोषों को सुधार सकतीं, तो मनोवांछित "ईश्वर का साम्राज्य" बहुत पहले ही स्थापित हो गया होता, संसार स्वर्ग बन गया होता, और आज का सा अभागा न रह गया होता। इन बातों से दोष न दूर होंगे। तुम्हारी सज़ायें, तुम्हारे जेलखाने और कारागार सुधार न कर सकेंगे। आज चाहे कल संसार को अनुभव करना पड़ेगा, कि जेलखानों और कारागारों के प्रभाव और सामर्थ्य में विश्वास करना भयंकर भूल है। धमकियों और दण्डों ने पाप को कभी नहीं रोका। दोषों को अमोघ रीति पर दूर करने के लिए आपको विद्या, ज्ञान, उत्कर्ष, सजीव विद्या का

सञ्चार करना होगा। इसी बात की जरूरत है। लोग कहते हैं—'सूक्ष्म युक्तियों या अति सूक्ष्म तर्कों से हमें परेशान न करो।" अब हमें केवल युक्तियाँ और कल्पनायें नहीं चाहिए। ऐ लोगो! तुम पर शासन कौन करता है? संसार का नियन्ता कौन है? कल्पना, विचार, भावना या कोई और? आपका भीतरी प्रकाश, आपका भीतरी ज्ञान ही, आपको मार्ग दिखाता है। इसके सिवा और कोई पथ नहीं। जेलखाने और कारागार रखने के बदले आपको अपराधियों को शिक्षा देनी होगी, उन्हें संसार का शासन करने वाले दैवी-विधानो और दिव्य नियमों का ज्ञान प्रदर्शन नहीं अपितु परिचय कराना होगा। कहा गया है—"ज्ञान ही सदाचार है।" (Knowledge is virtue) यह बिलकुल सत्य है। यहाँ एक बच्चा है। आग को छूकर बच्चा अपनी उँगली जला लेता है। क्यों? क्योंकि लड़का यह नहीं जानता कि आग जला देती है। आग जलाती है, इस सत्य से बच्चे को परिचित करा दो, फिर वह कभी अग्नि को न छुयेगा। लोगों को आध्यात्मिक नियमों से परिचित करा दो, मानव जाति को प्रकाश में लाओ। यह दवा है। यह तरीका धीमा, घोंघे जैसा सुस्त भले ही हो, किन्तु है निश्चित। यह विधि अति मन्द, प्रमाद पूर्ण हो, किन्तु है यही एक मात्र औषधि, एकमात्र अमोघ चिकित्सा। दूसरा कोई और उपाय नहीं है। अतः सिद्ध है कि ईसाई-आचार विचार से, दण्डों और नियमों या विधानों से भारत कदापि नहीं उठाया सकता। उसे तो केवल "सत्य" के "जीते-जागते" ज्ञान की जरूरत है।

अमेरिकनों और अंग्रेजों के घर बड़े सुन्दर हैं। और इसमें संदेह नहीं कि भारतवासियों के घर टूटे-फूटे हैं, किन्तु भारत में अच्छे, सुन्दर भड़कीले महल बनाने से, और भारतवासियों को यूरोपियनों के से गरम-घरों में पलने वाले पौधे बनाने से, कोई उन्नति न होगी। बहुतेरे मामलों में राज-भवनों और राज-प्रासादों के होने पर भी, उनके रहनेवाले सुखी नहीं होते। कीड़े, मकोड़े, साँप, प्रायः सुन्दर कब्रों में रहते

हैं। चाहे यह नियम न हो, किन्तु काफी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि बाहरी चमक-दमक और महिमा से सुख नहीं मिलता है। यह एक तथ्य है। यदि संसार यह अनुभव नहीं करता, तो संसार का दोष है। धन से दोष दूर न होंगे। राम वेदान्त की बात कहता है, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति का मनोरञ्जन नहीं होता, जो हरेक की आशाओं के अनुकूल नहीं होतीं, किन्तु यह तथ्य है कि धन-दौलत से कोई सुख न मिलेगा। यदि यूरोप, अमेरिका दौलत के पीछे पड़े हुए हैं और उसे सुख का साधन समझ रहे हैं, तो यूरोप और अमेरिका भयंकर भूल कर रहे है। राम की सिफारिश यह नहीं है कि हिन्दुस्तानी यूरोप और अमेरिका की भूलों की नकल करके आगे बढ़ें। भौतिक समृद्धि उसे कभी नहीं मिली, जिसने भौतिक समृद्धि के ही लिए उसका पीछा किया। कौन राष्ट्र या व्यक्ति ऐसा है जो सारे विश्व का द्रव्य बटोरना नहीं चाहता, किन्तु ऐसे बहुत कम है जिनकी यह कामना पूरी होती है। विभूति या वैभव सदा श्रम और प्रेम, निस्स्वार्थ प्रेम की रेखा के पीछे पीछे चलता है। वही राष्ट्र उन्नति करते है जिनके पास जान-बूझकर या अनजाने सफलता की यह कुंजी—व्यावहारिक वेदान्त की भावना—अधिकांश में प्राप्त रहती है। अज्ञानी मूर्ख पेड़ों को पालते तो नहीं, किन्तु उनके फल खाने को उत्सुक रहते हैं। झूठे राजनीतिज्ञ शक्ति के मुख्य स्रोत स्वाधीनता और प्रेम की भावना के बिना ही राष्ट्र का उत्थान करने का विचार करते है। अन्य राष्ट्रों का अनजाने, और भारत का समझे-बूझे, जीवन-तत्त्व व्यावहारिक वेदान्त है, जो स्वाधीनता, न्याय और प्रेम की वृत्ति है। भारत का यही आन्तरिक स्वभाव प्रबल किया जाना चाहिए। हरेक देश का घरू, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक उद्धार वेदान्त के व्यवहार से ही संभव है।

भारत की एक खास विशेषता है। यद्यपि हिन्दू यथार्थ में अन्ध-विश्वासी नहीं हैं, तथापि धर्म के प्रति उनका आदर और उत्साह इतना

अधिक है कि बिना धर्म का नाम लिये किसी भी चीज को, चाहे सामाजिक हो, धार्मिक या किसी प्रकार की, तुम उनमें लोकप्रिय और व्यापक ही नहीं बना सकते। भारतीय राष्ट्रीय महासभा या दूसरी कोई संस्था या संगठन, जिसका लक्ष्य सामाजिक या राजनैतिक सुधार है, धर्म के नाम पर न होने के कारण जनता को स्पर्श और उनकी अन्तरात्मा को प्रभावित नहीं कर सकती, ऐसी दशा होने से, भारत में सब प्रकार के सुधारों का प्रवर्तन करने के लिए वेदान्त से बढ़कर प्रभावशाली कोई और तरीका हो ही नहीं सकता जो राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, घरेलू, बुद्धि-विषयक और सदाचारिक अथवा नैतिक स्वाधीनता तथा प्रेम का आलिंगन करता है, जो अद्भुत रूप से स्वाधीनता और शान्ति, उद्योग और स्थिरता, वीरता और प्रेम की एकता कराता है। व्यावहारिक वेदान्त सब कुछ करता है धर्म के नाम पर, धर्म-ग्रन्थों (श्रुति, उपनिषद्) के नाम में—हिन्दू-हृदय के सबसे अधिक नगीची वेदों के नाम में, जिससे अधिक मान्य हिन्दू के लिए और कुछ है नहीं, जिसके लिए बड़ी तत्परता से हिन्दू अपनी जान तक दे सकता है। पुनः स्वाधीनता और प्रेम की इस भावना को हिन्दुओं की इन्जील रूप उपनिषदों से, वचनों को तोड़-मरोड़ कर हमें नहीं निकालना पड़ेगा, यह उनमें बहुत साफ तौर पर पाई जाती है। वेदान्त जनसाधारण के मर्म को स्पर्श करता है, क्योंकि यह उन्हीं के इंजील की शिक्षा है, वह शिक्षित हिन्दू के हृदय को प्रभावित करता है, क्योंकि अखिल विश्व में नाम लेने के योग्य ऐसा कोई तत्वज्ञान नहीं है जो वेदान्तिक अद्वैतवाद का समर्थन न करता हो, और न कोई ऐसा पदार्थ विज्ञान है जो वेदान्त या "सत्य" के पक्ष को पुष्ट और अग्रसर न करता हो।

आश्चर्य की बात है, जिन भारतवासियों के धर्म-ग्रन्थों में वेदान्त के ऐसे सदा हरे-भरे निर्झर मौजूद हैं, वे भारतीय 'टंटालुस'

जैसी नारकीय पीडा पा रहे हैं, वे इन निर्झरों का जल क्यों नहीं पीते ? ठीक इसी तरह बहुत समय तक रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाई इंजील के भयंकर अज्ञान से जो उनकी संसार में अत्यन्त प्रिय वस्तु थी, कष्ट पाते रहे । भारत में कुछ लोग ऐसे हैं, यद्यपि अधिक नहीं, जिन्हें वेदान्त का पूर्ण ज्ञान है। किन्तु उनका ज्ञान काल्पनिक और अव्यावहारिक है । वे उस विद्यार्थी के समान हैं जिसको क्रिया और विभाग क्रिया के नियम कंठाग्र हैं, किन्तु जिन्होंने गुणा या भाग के एक भी प्रश्न को हल करने में उन नियमों का प्रयोग नहीं किया है । अधिकांश पंडित, रसायन विद्या के किताबी विद्यार्थी की तरह, जो एक भी प्रयोग नहीं करता वेदान्त को पढते हैं। अधिकांश संन्यासी, सच्चे स्वामी होने के बदले, स्वय जाति और रूप के दासो और गुलामों से बढ़कर नहीं हैं । निस्सन्देह वेदान्त के अध्यापक एक बडी संख्या में भारत में आपको मिलेंगे, किन्तु उनमें से अधिकांश विश्वविद्यालय के 'जल-वेग गणित-विद्या' के उस अध्यापक के समान है, जो गुब्बारों के चढने, जहाजों के खेने, तैरने के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में शिक्षा तो देता है, पर आप कभी थोड़े से पानीवाली नदी के भी पार नहीं गया है। तुम लोग अमेरिकावाले चाहे जल गणित के अध्यापक भले न होओ, किन्तु तुम उस असली मल्लाह के तुल्य हो, जो जल-गणित का तात्त्विक ज्ञान रखने का गुमान तो नहीं करता, किन्तु अनजाने उन सिद्धान्तों को अध्यापक से कहीं अधिक अमल में लाता है । इस तरह अमेरिका वालो ! अपनी अमली उद्योग शक्तियों को वेदान्त की अध्यात्मिक शक्ति से जोड़ कर और इस पूर्ण शिक्षा को भारत में ले जाकर, तुम भारत के पक्ष की ओर इस प्रकार सारे संसार की सहायता कर सकते हो। आज तो यह दशा है कि भारत के स्वामी और पण्डित अपनी जाति के प्रमाद और निद्रा को बढ़ाने के लिए ही लोरियाँ गा रहे हैं ।

यह कहा जाता है कि औद्योगिक महाविद्यालयों (Industrial Colleges) और संस्थाओं (Institutions) की स्थापना से दोषों का सुधार होगा। क्या सचमुच ? नहीं, ऐसी संस्थाओं से कुछ काल के लिए भले ही चैन मिल जाय, किन्तु असली कठिनाई, मुख्य क्लेश और भयंकर पीडा भारत में केवल औद्योगिक महाविद्यालयों से नहीं दूर की जा सकती। इन दिनों भारत में मजदूर अपनी मेहनत के लिए क्या पाते हैं ? उदाहरण के लिए, कुम्हार को ले लीजिए, वह बीस बरतन बनाता है। उनके बनाने में उसे बहुत समय तक मेहनत करनी पडती है, और उसे इन बीस बरतनों के लिए मिलता क्या है एक टका ! बीस बरतनो के लिए एक टका ! बीस बरतनों के लिए एक टका !! कुछ दूसरे काम करनेवालों को सारे दिन की मेहनत के पाँच टके मिलते है। कुछ ऊँची जाति के लोग है, जो महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयों में पढते हैं, उपाधियाँ पाते हैं और कीर्ति के साथ, एम० ए० बनकर, निकलते है। उनका मासिक वेतन कितना होता है ? आम तौर पर साठ रुपये, अर्थात् बीस डालर से अधिक नहीं, करीब-करीब दो तिहाई डालर रोजाना। किन्तु साधारण एम० ए० को इतना भी नहीं मिलता। साधारण एम० ए० को प्रायः इतना भी नहीं मिलता। भारत की यह दशा है। अमेरिका में तुम्हारा मामूली मजदूर क्या पाता है ? दो डालर (छः रुपये) प्रति दिन। अच्छा, यह क्या बात है कि हिन्दुस्थानियों को इतना कम वेतन दिया जाता है ? उनके कपडे-लत्ते फटे पुराने होते है, भोजन बहुत रूखा-सूखा होता है, उनके घर बडे ही दीन-हीन होते हैं, और उनके आराम का मान (Standard) बहुत ही निम्न श्रेणी का होता है। ऐसा क्यों है ? देश में पूँजी की कमी के कारण। क्या आप नहीं देखते कि पूँजी तो देश से बराबर बाहर खींची जा रही है। इस देश में अमेरिकन-भारतीयों (American Indians) के लिए 'कार्लिस्ल इंस्टीट्यूट' और नीगरो जाति

(Negroes) के लिए 'टस्केगी इंस्टीच्यूट' हैं। यदि कारीगरी के ऐसे महाविद्यालय हम हिन्दुस्थान में क़ायम करें, तो कुछ हित अवश्य होगा। लोग मेहनत और काम करना सीखेंगे। पर हमारा यह परिश्रम किस की महिमा, किसके गौरव, किसके लाभ के लिए होगा ? कृपया बतलाइये ? मुख्यतः इंगलैंड के पूँजीपतियों की महिमा बढ़ाने के लिए। भारत के सभी बड़े बड़े कारखाने अंग्रेज सौदागरों के हाथों में हैं। भारतीय व्यापारी नाम मात्र के पूँजीपति हैं। यूरोप और अमेरिका के पूँजीपति उन्हें अपने फंदे में फँसा लेते हैं। कारीगरी के महाविद्यालयों और शिक्षा के होते हुए भी हिन्दुस्थानियों के हाथ क्या लगेगा ? लोगों को क्या लाभ होगा ? वे तो तब भी दुख भोगते रहेंगे। क्या उनका भूखों मरना और अकाल इस तरह दूर होगा ? चिरस्थायी दवा औद्योगिक महाविद्यालयों (Industrial Colleges) से नहीं मिलेगी, तो फिर हमें क्या करना चाहिए ? हमें बहुतेरी चीज़ों की ज़रूरत है। किन्तु वर्तमान समय में उच्च जातियों को, और नीच जातियों को भी शिक्षा की प्रथम आवश्यकता है। उन्हें सिखाओ, उनमें स्वाधीनता की भावना भर दो, वह उनके हृदय में उतार दो और सत्य की निस्वार्थ शक्ति से उन्हें भर दो। यही वर्तमान आवश्यकता है। ऐसी पूर्ण शिक्षा कला-कौशल की शिक्षा को भी अपने साथ लिपटा लेगी, किन्तु केवल उद्योग-धंधों से काम न चलेगा। उद्योग-धंधे तो दूसरे दर्जे की चीज़ें हैं, किसी उच्चतर वस्तु की ही इस समय उन्हें सख्त ज़रूरत है।

इस समय भी भारत में वांछनीय ढगों पर कुछ शक्तियाँ काम कर रही हैं। उनके काम पर हमें विचार करना चाहिए। ईसाई धर्म-प्रचारक अमेरिका से जाते है और वहाँ जी तोड़ काम करते हैं। वे जाति-भेद को तोड़ने की चेष्टा करते हैं, यह उनका दावा है। वे लोगों को शिक्षा देने का यत्न करते हैं, वे अन्त्यजों, नीचतम जाति को सहायता पहुँचाने को कोशिश करते हैं। किन्तु आओ, हम लोग जाँच करें

कि उनके दावे कहाँ तक सही हैं। सबसे नीची जातियों के हितार्थ कुछ करने के लिए भारत उनका कृतज्ञ है। वे एक हद तक अति नीच जाति के लोगों को शिक्षा दे रहे हैं, जिनको किसी दूसरी परिस्थिति में लिखना और पढ़ना सिखाना असाध्य था। अवश्य यह महान् कार्य है। ईसाई-धर्म-प्रचारक-दल के महाविद्यालय और स्कूल ऊँची जाति के लोगों को भी उच्च-कोटि की शिक्षा दे रहे हैं। भारतवासियों को शिक्षा देने की दिशा में अब तक बहुत कुछ कर चुकने के लिए हम अमेरिका की धर्म-प्रचारिणी संस्थाओं (American Missions) को धन्यवाद देते है, किन्तु इस कार्य के बुरे पहलू की ओर से हमें बेपरवाह नहीं होना चाहिए। भारत में जानेवाले ये ईसाई-धर्म-प्रचारक कम से कम तीन सौ रुपया महीना वेतन पाते हैं। वे नवाबों की तरह पूरे शाही ठाट-बाट से रहते हैं, वे लोगों पर हुकूमत करते है, हिन्दू परिवारों में लड़ाई-झगड़ा और टंटा पैदा करते हैं। वे भारत की वर्तमान् अनेक जातियों में एक जाति और बढा रहे हैं। जो हिन्दुस्थानी ईसाई धर्म ग्रहण कर लेते हैं, वे साधारणतः दूसरे हिन्दुओं के लिए ऐसे कटु हो जाते है कि न वे हिन्दुओं से मिलते-जुलते है, और न हिन्दू उनसे मिलते-जुलते हैं। उनके आपस के बर्ताव में बडा तनाव पडता जाता है, भेद की खाई बहुत चौड़ी होती जाती है, और दिन ब दिन वैरभाव बढ़ता ही जाता है। बेटियाँ माता-पिताओं से और स्त्रियाँ पतियों से अलग होती जाती हैं। ये लोग अशिक्षित हिन्दू जनता द्वारा मान्य धर्मादेशों (Dogmas) के स्थान में ईसाई धर्म के आदेशों का प्रचार करना चाहते है, जो और भी रद्दी हैं। ईसाई दानशीलता 'कडुई छिद्रान्वेषण' (Smarting Criticism) के द्वारा कोमल-मति बच्चों को फुसला कर माँ-बाप से छुटा देने और उनकी कोमल गर्दनों को ईसाई अन्ध-विश्वासों के जुए में जोतने का काम करती है। ऐसी दशा में तुम्हारी सद्भाव-पूर्ण युक्त ईसाईयत हिन्दू-हृदय में, जो सहानुभूति या प्रेम की एकाध बूँद इस

कटु छिद्रान्वेषण और दलबन्दी जन्य वृत्ति की लूट-खसोट के बाद शायद बची होती है, उसे भी सुखा डालने की प्रवृत्ति रखती है। वह है तुम्हारे प्रचार का बुरा पहलू। इस प्रकार हम देख सकते है कि इस रूप से कोई सुधार न होगा। यद्यपि अति उत्तम भावनाओं से करोडों रुपया व्यय करने के लिए हम अमेरिकावासियों के कृतज्ञ है, तथापि राम आपका ध्यान इस तथ्य की ओर खींचना चाहता है कि आपकी प्रस्तावित औषधि ठीक नही है, वह केवल रोग को और भी बढ़ाती है।

अनेक कारणों से हम अंग्रेजी सरकार के कृतज्ञ हैं। अंग्रेजी सरकार ने भारत में मूल जाति-भेद तोड़ने की दिशा में बहुत कुछ किया है। अंग्रेजी सरकार ने भारत में नूतन शिक्षा को उत्तेजना दी, अंग्रेजी सरकार ने वहाँ विश्वविद्यालय और महाविद्यालय स्थापित किये। अंग्रेजी हुकूमत की ही बदौलत हिन्दू अपने प्राचीन धर्म ग्रन्थों को पुनः विधिपूर्वक पढ़ने में समर्थ हुए। यह अंग्रेजी राज्य का अच्छा पहलू है। अब अन्धकार वाला पहलू लीजिए। ब्रिटिश सरकार ने भारत का सर्वस्व हरण कर लिया है। अंग्रेजी सरकार ने भारत को ज्ञान की ऊपरी चमक दमक बेशक दी है, किन्तु उसने भारत को हर प्रकार से निर्धन बना दिया है, और उसे ऐसी बुरी दशा में पहुँचा दिया है कि यदि सरकार के ढंग बहुत जल्दी रोके या बदले न गये, तो गरीबी हिन्दुओं को खा जायगी और वे भूतल ही से लोप हो जायँगे। भारतीय राजा-महाराजा और भारतीय रईस अपने मूल्यवान् रूप और शक्ति खोकर अब केवल गलीचों में बने हुए बेलबूटे के शूरवीरों के चित्रों के समान हो गये हैं। उनके पास रह गई हैं केवल खोखली झनझनाती हुई उपाधियाँ तथा लम्बे-चौडे आडम्बरमात्र। अब भारत की वर्तमान शिक्षा के बारे में सुनिये। इन दिनों अंग्रेजी सरकार को जन समूह का उत्कर्ष भी खलने लगा है। जब राम भारत में था तब जनता में उच्च शिक्षा (higher education) का प्रचार रोकने का प्रबन्ध किया जा

रहा था। अच्छा, इन विश्वविद्यालयों में क्या पढ़ाया जाता है ? मुर्दा भाषायें काल्पनिक तत्वज्ञान, गणितविद्या, भूतकालिक इतिहास, उपयोग में न लाने योग्य रसायन विद्या, तथा ऐसे ही अन्य विषय। किसी भी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में अंग्रेजी को छोड़कर कोई जीती-जागती उपयोगी भाषा नहीं पढ़ाई जाती। लोगों को अंग्रेजी इस लिए पढ़ाई जाती है कि उन्हें अंग्रेज अफसरों की मातहती में काम करना पड़ता है। अंग्रेज लोग देशवासियों की भाषा पढ़ने का कष्ट नहीं उठाना चाहते हैं। वे चाहते है कि लोग उनकी भाषा पढ़े, ताकि उनकी सेवा कर सके। गणितविद्या पढ़ाई जाती है और इन विश्वविद्यालयों में गणित विद्या का मान अमेरिका से कहीं बढ़ा-चढ़ा है। उन्हें आध्यात्मिक शास्त्र, काल्पनिक शास्त्र और अन्य विज्ञान संक्षेप में पढ़ाये जाते हैं, किन्तु इन नामधारी कला (आर्ट्स) महाविद्यालयों में किसी उपयोगी कला का कोई व्यावहारिक विज्ञान नहीं पढ़ाया जाता। उपयोग में आने योग्य रसायन-विद्या नहीं पढ़ाई जाती। कातने-बुनने की कला अथवा खानों सम्बन्धी विद्या की शिक्षा विश्वविद्यालयों में नहीं दी जाती। रंगसाजी, कुम्हारी, मिकैनिकल इंजीनियरी (Mechanical Engineering) कहीं नहीं सिखाई जाती। इन उपयोगी हुनरों से भी लोग वंचित रखे जाते हैं, फिर शस्त्र-विद्या की चर्चा ही क्या ? अपने घरों में लोग किसी तरह के शस्त्रास्त्र नहीं रखने पाते। लोग अपने घर में बड़ा चाकू भी नहीं रख पाते। बड़ा चाकू रखनेवाले को जेल भेजा जाता है। किसी तरह के शस्त्रास्त्र या युद्ध विद्या की शिक्षा नहीं है। इससे तुम उस शिक्षा की असारता जान सकते हो जो कुछ उन धनी हिन्दुओं या मुसलमानों को दी जाती है, जो भारतीय महा-विद्यालयों की शिक्षा की बहुत बड़ी फीस देने की शक्ति रखते हैं।

भारत में कुछ नवस्थापित श्रेष्ठ दल हैं जो सुधार का अति सुन्दर काम कर रहे हैं, किन्तु वीरजनों की पूजा और प्रमाण के सामने झुकने

की वृत्ति, जो उनके नस नस में समा गई है, लोगों को उस प्रत्येक वस्तु के विपरीत कर देती है जो उनके नेताओं के नाम पर उनके पास नहीं पहुँचाई जाती। हरेक दल या आन्दोलन नामों और व्यक्तियों की बाढ़ अपने इर्द-गिर्द बाँध लेता है। अपने मरे हुए नेताओं की करतूतों और कहावतों से आगे बढ़ते समय उनके आदर्श को आरम्भिक विन्दु बनाने के बदले वे उन्हें सीमान्त रेखायें, अनुल्लंघनीय बाढ़ मान बैठते हैं। इस तरह पर भारत में सुधार की देशी-संस्थायें शीघ्र ही जड़वत् स्थिर होने लगती हैं।

आपको भारत का रोग बता चुकने के बाद, और इस रोग को दूर करने के उपायों की सूचना देने के अनन्तर राम आपसे भारत के लिए चिन्ता करने की, उसका हित सम्पादन करने की, प्रार्थना करता है। पहली आवश्यक चीज यह है। यदि भारत के लिए आपका दिल दुखता है और दिलोजान से आप उसकी पीड़ा दूर करने के काम में लग जाते हैं, तो सब कुछ हो सकता है। "इच्छा होने से ही उपाय निकल आता है" (Where there's a will there's a way)। भारत के लिए कुछ करने का संकल्प कीजिए। क्या मानवजाति की भलाई के विचार से आप भारत के लिए कुछ करने को तैयार हैं? क्या आप भारत को दिलोजान से प्यार करेंगे? एक पददलित जाति के कल्याण के लिए अपना जीवन होम देने को क्या आप राजी हो सकते है? क्या उसके काम के लिए आप अपना समय और जीवन लगा देने को तैयार हैं? तीस कोटि मनुष्य दुनिया की सम्पूर्ण जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग है। तीस कोटि मनुष्य! हम उन्हें सिखा सकते हैं, शिक्षा दे सकते है, उनकी उद्योग-शक्तियों को अच्छे काम के लायक बना सकते हैं। यदि ये तीस कोटि मनुष्य आपके साथ काम करने लग जायँ, यदि वे आप ही की तरह विचार करने लगें, यदि उन्हीं बातों में वे अपने मस्तिष्कों को लगा देवें जिनमें

आप लगाते हैं, तो क्या आपको उनसे सहायता और प्रेरणा न मिलेगी? यदि तुच्छ क्षोभों (रोषों) और झगड़ों में नष्ट होने से हिन्दुस्तानियों की बुद्धि और शक्तियाँ बचाई जाँय, और उच्च विचारों तथा श्रेष्ठ भावनाओं में लगा दी जायँ, तो भारत की बड़ी भारी जन-संख्या अमेरिका से कहीं अधिक फ्रांकलिन (Franklins) और एडिसन (Edisons) पैदा करेगी। इस तरह भारत की शक्तियों का उपयोग करने से क्या संसार की विभूति में वृद्धि न होगी? संसार को समृद्ध करने के लिए, अपने साथी मनुष्यों की सहायता के लिए, अपनी निजी भलाई के लिए, भारत की चिन्ता कीजिए और भारतवासियों को अपनी ही श्रेणी में ले आने की कोशिश कीजिए। यही करना है।

भारत को ऊपर उठाने के उपाय

अच्छा, भारत कैसे सम्पन्न हो सकता है? यहाँ राम को दो उपाय सुझाने हैं। अच्छा, सुनिये एक बात तो यह है कि अमेरिकावासी, यथार्थ में उत्सुक अमेरिकावासी, सत्य के लिए अपना बलिदान करनेवाले अमेरिका-वासी, हिन्दुस्तान भेजे जाँय। हाँ, अमेरिका का कूड़ा वहाँ न भेजो। अमेरिका में जिन लोगों को कोई काम नहीं मिल सकता, उन्हें हिन्दुस्तान में मत भेजो। हाँ, यहाँ के समाज का सत, अमेरिका की मलाई, भारत-वर्ष को भेजो; उसी की वहाँ आवश्यकता है। हमें वहाँ उन लोगों की ज़रूरत है जो अन्त्यजों, नीचतम जाति, के बीच में जाकर काम करें। इस श्रम के लिए उन्हें कोई धन्यवाद न मिलेगा, ये शूद्र आपको इनाम न देंगे, वे आपके काम के लिए धन्यवाद भी न देंगे, क्योंकि ये लोग बड़े गरीब हैं, अपढ़ हैं, जाहिल है। आप उनके लिए जो कुछ करेंगे उसके पुरस्कार में वे आपको वस्त्र और भोजन भी न देंगे। क्यों! कारण यह है कि उनके पास खुद ही खाना और कपड़ा नहीं है। वहाँ उन पुरुषों की जरूरत है जो इन लोगों के बीच में जाकर काम करें, जो अपने को भूखा मारकर इन गरीब आदमियों की सहायता

करें । क्या अमेरिका के आदमी इस काम को न उठावेंगे ? श्रेष्ठ अमेरिका से, स्वार्थत्यागी (अपने को बलिदान करने वाले) अमेरिका से भारत को ऐसे महा पुरुष मिलने चाहिए ? एक अच्छी टोली, सुहृदय लोगों का एक दल, जो लोग इस काम को उठायेंगे, उसके लिए राम अपील करता है । राम उस ढंग के धर्मप्रचारक (missionaries) नहीं चाहता है, जो भारत को जाते है, जो अमीरों के बँगलों में रहते हैं और लोगों पर प्रभुता जमाते है, जो घोडा गाडी में सैर करते हैं और लौकिक प्रतिष्ठा की खोज में पागल बने फिरते है । इन लोगों के द्वारा भारत का उद्धार और उत्थान नहीं हो सकता । हमें सच्चे काम करनेवालों की, सत्य के लिए बलिदान होनेवालों की, उन त्यागियों की ज़रूरत है, जो अछूतों के साथ ज़मीन पर लेटने को राज़ी और तय्यार हों और जो उनके साथ चीथडे पहन कर संतुष्ट रहें, जो उनके साथ भूखे रहें, जो उनके साथ अधकच्ची रोटी का खुरखुरा और कडा छिलका खाने को तैयार हों । हम उस तरह के लोग चाहते हैं जो अपनी इन्द्रियों के भोगों को छोड सकते हैं और स्वार्थपूर्ण सुखों को छोडना पसन्द करते हैं । आप कहेंगे, "यह कठिन कर्त्तव्य है" और "ऐसा काम करना बहुत मुश्किल है ।" नहीं, इसे कठिन, धन्यवाद रहित, काम न समझो । इसका काफी इनाम है । निजी अनुभव बतलाता है कि यदि हम दूसरे मनुष्य को उठाने की चेष्टा करते हैं, तो वह आदमी चाहे उठे या न उठे, किन्तु हम अवश्य उठ जाते हैं । "क्रिया और प्रतिक्रिया समान और विपरीत होती है," (Action and reaction are equal and opposite) । दूसरों को लाभ पहुँचाने के विचार से कोई काम उठाने की हमारी धारणा निरर्थक है, यह मूर्खता पूर्ण भूल है । अमेरिकावासियो ! राम के व्याख्यानों से तुम्हारा लाभ चाहे हुआ हो या न हुआ हो, किन्तु उनसे राम का लाभ अवश्य हुआ है, और यही काफी इनाम हैं । हरेक व्यक्ति का अनुभव यही प्रकटक रता

है। इस बात को, इनाम पर बिना दृष्टि रक्खे हुए करो। तुम्हारा काम खुद ही अपना पुरस्कार होगा। निस्स्वार्थ काम ईश्वर को ऋणी बनाता है, और ईश्वर ब्याज सहित ऋण चुकाने को बाध्य है। अमेरिकनो! हिन्दुस्तान को जाओ और आत्मज्ञान (Self-knowledge), आत्म-निर्भरता (Self-Reliance) और आत्म-सम्मान (Self-Respect) अर्थात् वेदान्त का खूब प्रचार करो। उस दिन तुमने "सफलता की कुंजी" पर राम का व्याख्यान सुना था, और यह सिद्ध किया गया था कि सफलता का एक मात्र रहस्य व्यावहारिक वेदान्त है, दुनिया की दूसरी कोई वस्तु नहीं है। केवल वही सफलता का रहस्य है। उस वेदान्त को प्राप्त करो, उसे स्वयं अनुभव करो, उस पर अमल करो और वहाँ जाओ। तुम अपने ओंठ चाहे खोलना या न खोलना, तुम्हारा चरित्र ही, तुम्हारा व्यापार (कर्म) ही, तुम्हारा बर्ताव ही उन्हें शिक्षा देगा।

भारत जाने वालों के ध्यान में जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य अंकित करने के योग्य है, वह यह है कि वे भारतवासियों में साहस के भाव (adventurous spirit) को जागृत करें। वे बेचारे इस विस्तृत विश्व में निवास नहीं करते, वे अपनी ही दीन, हीन, क्षुद्र दुनियाओं (जीव सृष्टि) में वास करते हैं। जाति-प्रथा का प्रतिबंध (hampering caste system) हिन्दू को भारत से बाहर पग रखने को मना करता है, दूसरे देशों को जाना और जहाज़ पर सवार होना कठोर धर्माचार के विरुद्ध है। इन दिनों जिन धनी हिन्दुओं में धर्म की कट्टरता को त्यागकर काफी साहस और नास्तिकता आ गई है और जो विदेशों को, विशेषकर इंगलैंड को, शिक्षा पाने के लिए जाते हैं, वे भारतीय हज़ारों रुपए दूर देशों में खर्च करके आम तौर पर सोलहों आने बारिस्टर बनकर आते हैं, और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने मुवक्किलों, ग़रीब किसानों से झटका हुआ रुपया कुछ नशीली अंग्रेजी शराबों और मद्यों में खर्च करते हैं, कुछ सहज में टूट जानेवाले काँच के पदार्थ (Brittle glassware),

लोहे की चीजें (cutlery) चित्रपट (tapestry) या इंगलैंड के बने हुए चित्रों को खरीदने में खर्च करते हैं। इन गरीब भुक्खड मज़दूरों की तुनकमिजाजी और मुकदमेबाजी उनकी गरीबी और भूख की वृद्धि के अनुपात में ही बढ़ती जा रही है, उनसे हरण किये हुए धन का यह कैसा भयकर दुरुपयोग है!

भारतीय गरीब जातियों में जापानियों की साहसिक मनोवृत्ति के प्रचार करने की बहुत ही अनिवार्य आवश्यकता है। जापानी लडके केवल जहाज-भाड़ा लेकर अमेरिका चले आते हैं। वे अमेरिकन भद्र पुरुषों के घरों में काम करते हैं और विभिन्न प्रकार की पाठशालाओं में पढ़ने का प्रबन्ध कर लेते हैं। इस तरह अमेरिका में कुछ साल बिताकर वे अपनी जेबें रुपयों से और मस्तिष्क विद्या से खचाखच भरकर जापान को लौटते हैं।

अन्ध विश्वास और (जन्म) भूमि से चिपटे रहने की आदत को त्याग देने की शिक्षा भारतवासियों को इस समय देना चाहिए। जाति-प्रथा के कारण उन्होंने अपने (जन्म) भूमि का दास बना लिया है। अपने पूर्व पुरुषों की भूमि को छोडना ये किसी अंश में धर्म का उल्लंघन समझते हैं, और इस तरह अपने आपको भूमि का गुलाम बना लेते हैं। समय की गति के साथ-साथ बढ़नेवाला बनाने के लिए हमें उन्हें स्वदेश छोडकर विदेश जा कर बसने की शिक्षा देनी चाहिए। लोग यूरोप से निकल पड़े, यहाँ अमेरिका आये, और अमेरिका को इन्होंने इतने ऊँचे पर पहुँचा दिया कि यूरोप बहुत पीछे रह गया। यदि हिन्दुस्तानी भारत छोड करके अमेरिका आवें, दूसरे देशों को जायँ, तो भारत को वहाँ कम लोगों को खिलाना पडे, और फलतः वहाँ पीछे रह जानेवाले लोग मजे में हो जायँ, साथ ही देशांतरगामी भी अच्छे रहें। हमारे शरीर-तंत्र के स्वास्थ्य के लिए रक्त को निरन्तर घूमते रहना चाहिए। इसी तरह दुनिया या किसी देश के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए लोगों को प्रायः घूमते, विचरते और एक दूसरे से मिलते-जुलते रहना चाहिए, अन्यथा

जड़ता या मृत्यु की प्राप्ति होती है। यदि हम इंग्लैंड और अमेरिका में आकर हिन्दुओं को शिक्षा देने का प्रयत्न करें, तो लाख चेष्टा पर भी हम वास्तविक स्वाधीनता के भाव को उनमें नहीं जगा सकते, क्योंकि आम तौर पर लोगों के आस-पास के पदार्थ, निकटवर्ती सामान्य वस्तुयें उन्हें जड बनानेवाली हैं, चारों ओर की सम्मतियाँ वा सूचनायें इन लोगों को दुर्बलता के मोह में फँसा रखती है। यह मोह-जाल दूर करने के लिए उन्हें स्वदेश को छोडना चाहिए। और जब वे कोई विद्या या रोजगार भी वहाँ न सीखें, केवल विदेशी सभ्य लोगों से मिलने-जुलने से ही अनजाने, मर्जी या बेमर्जी से ही स्वतंत्रता की वृत्ति प्राप्त करेंगे, तो उनकी दृष्टि की दौड बढ़ जायगी, उनका क्षेत्र विस्तृत हो जायगा, उनके विचार फैल जायँगे। यह आप ही आप शिक्षा होगी।। "दूसरे देशों को देखना खुद ही एक शिक्षा है।"

भारतवर्ष में कोई हिन्दू या मुसलमान, या कोई भी साधारण देश-वासी, किसी अंग्रेज या अमेरिकन के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। वह गोरे आदमी से डरता है, बीस या तीस फुट की सम्मान पूर्ण दूरी पर खडा होता है। वह पतलूनों और हैटों को देखकर काँपता और थर्राता है। किसी रेलगाडी में यदि कोई यूरोपीय बैठा होता है, तो शायद ही कभी कोई देशवासी उसके साथ बैठने पाता है। रेल के स्टेशनों पर हिन्दुस्तानियों का अंग्रेजों से ठोकरें खाना और निकाला जाना राम ने देखा है। यदि कोई यूरोपीय किसी देशवासी को अपने घर की तरफ आते देखता है, तो वह अपने नौकर से उसे भगा देने की (हाते से ठोकरें लगाकर निकाल देने को) आज्ञा करता है। इस तरह भारतवासियों पर विदेशियों के द्वारा दुर्बलता, दुर्बलता का जादू चलाया जा रहा है। साथ ही फिर अपने सजातियों द्वारा भी अपने ही स्वदेशियों द्वारा उन पर ईर्ष्या, द्वेष और मत भेदों का चक्र चलाया जाता है। "यह कोई अन्य वस्तु है, मै कोई दूसरी वस्तु हूँ, अमुक मेरा

प्रतिद्वन्द्वी है, अमुक मेरा शत्रु है।" फिर सभी सरकारी दफ्तरों में, अच्छी नौकरियों में कुल या जाति-भेद के विचार द्वारा, सरकार दलबन्दी के भाव को बढ़ाती है, और इस तरह पर काम चलाती है कि हर मनुष्य अपने भाई का ही शत्रु हो जाय, और उसे अपना घोर बैरी समझे। भारत की वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक दशा लोगों में स्वतंत्रता का भाव कदापि स्वचित न होने देती। शिक्षा क्या वस्तु है? शिक्षा का लक्ष्य स्वाधीनता के सिवाय और कुछ नहीं है। यदि शिक्षा मुझे स्वाधीनता और स्वतंत्रता (मोक्ष) प्रदान नहीं करती, तो उस पर धिक्कार है; हटाओ उसे, मुझे उसकी जरूरत नहीं। यदि शिक्षा मुझे बन्धन में रखती है तो वह मेरे किस काम की? इस तरह, उनमें सच्ची शिक्षा, या स्वाधीनता उत्पन्न करने के लिए उनका आस-पास, उनकी परिस्थिति बदलने में उनकी सहायता करो। यह कैसे किया जाय? इस काम को करने का एक ढंग है वहाँ जाना और वहीं उन्हें सिखाना।

अपरिहार्य आवश्यकता
और
तात्कालिक उद्धार

एक और तात्कालिक उपाय है। ऐ अमेरिकनो! क्या तुम सत्य और न्याय के नाम पर, धर्म और तत्त्वज्ञान के नाम पर, विज्ञान और हुनर के नाम पर, इतना काफी रुपया नहीं जमा कर सकते कि जिससे तुम भारतीय विश्वविद्यालयों के कुछ उपाधिधारी युवकों को अमेरिका बुलाओ, और यहाँ उन्हें अपने औद्योगिक, यांत्रिक तथा अन्य उपयोगी कोठियों में अपने साहित्य के महाविद्यालयों में, अपने अस्त्र-शस्त्रागारों और अन्य स्थानों में शिक्षा दिलाओ। उन्हें कपड़ा बुनना और खानों का काम करना तथा अन्य हितकर हुनर सिखाओ। भारत

को उठाने का यह एक बहुत ही सीधा-सादा रास्ता है। यहाँ रुपया जमा करके भारतवासियों को इस देश में बुलाओ। वे भारतवासी, जो अमेरिका में शिक्षा पावें, भारत को लौटकर औद्योगिक विश्व-विद्यालय (Industrial Universities) चला सकते है। वे गरीब श्रेणी के लोगों के रंग-ढग जानते है। वे गरीब हिन्दुस्तानियों की भाषा, आदतें और रीतियाँ जानते है, वे तुम्हारे भेजे हुए अमेरिकनों की अपेक्षा अध्यापक की हैसियत से भारतवासियों में अच्छा काम कर सकते हैं। अमेरिकन अध्यापक केवल ऊँची जातियों को पढा सकते हैं, वे केवल अमीर लोगों को पढा सकते है, जो अंग्रेजी जानते है। गरीब लोग अंग्रेजी नहीं जानते। गरीबों की शिक्षा के लिए हमें उन लोगों की जरूरत है जो उनकी भाषा और उनके तरीके जानते हैं। भारतवासियों को उठाने का यह ढंग सर्वथा ठीक और अत्यन्त अमोघ साधन है।

अमेरिका के स्वतन्त्र तट पर जब ऐसे भारतवासी कदम रक्खेंगे और भद्र महिलाओं और पुरुषों को सरगर्मी से अपने साथ हाथ मिलाने और अपने बराबरवालों के समान स्वागत करने को तैयार पायँगे, तब उनका डर भाग जायगा, फिर श्वेतांग पुरुष उनके लिए भय और आतंक की सामग्री न रह जायगा, उनमें आत्म-विश्वास लौट आयगा, माया का पर्दा फट जायगा और स्वाधीनता की मनोवृत्ति प्रत्यक्ष प्राप्त हो जायगी। अमेरिका में शिक्षा पाये हुए भारतीय विद्या-निधियों (graduates) को कर्म और स्वाधीनता का प्रचारक बनकर अपनी मातृभूमि को लौटना होगा। विज्ञान और कला की शिक्षा भारत में उनके द्वारा प्रचारित होगी। अपने देश में व्यावहारिक वेदान्त फैलाने में वे भारत के बसनेवालों की सहायता करेंगे। इस तरह से जब घाव पुर जायगा, तब पपड़ी आप ही आप गिर जायगी। जब लोग ठीक तरह की शिक्षा पायेंगे तब दूसरी कठिनाइयाँ आप ही दूर हो जायँगी। यदि कुछ भारतीय उपाधि-धारियों को तुम यहाँ बुला सको

और मान लो, उन्हें दो साल तक शिक्षा दे सको और पढ़ा सको, तो वे भारत लौटने पर तुरन्त काम शुरू कर सकते है, रोजगार चला सकते हैं, अपने लिए और उन गरीब जातियों के लिए भी उपयोगी काम कर सकते हैं।

अमेरिका का एक ही धनी इस श्रेष्ठ काम को कर सकता है, खडा होकर कह सकता है कि मै भारतीय विश्वविद्यालयों के उपाधिधारी को एम० ए०, बी० ए० को अमेरिका में शिक्षा दिलाने के काम में मान लीजिये तीस लाख रुपया लगाऊँगा। यदि तुममें से एक आदमी इस कर्त्तव्य को अभी उठा ले, इस काम को ले ले, और तीस लाख रुपए जमा करदे, तो गरीब भारतवासियों को अमेरिका में शिक्षा दिलाने के लिए हम अच्छी छात्रवृत्तियाँ स्थापित कर सकते हैं। राम अमेरिकन समाचार-पत्रों से अपील करता है, राम हरेक से और सब अमेरिका वासियों से विनय करता है। यदि तुममें से कोई आगे बढ़कर इस भार को उठा सकता है तो समग्र संसार का हित होगा। मान लो कि जो लोग यहाँ मौजूद हैं, उनमें एक भी इतना धनी नहीं है, तो क्या, अपने अमीर मित्रों, अपने अमीर पड़ोसियों के सामने तुम इस विषय को नहीं रख सकते? क्या तुम अपने अमीर मित्रों से एक बार राम से मुलाकात करने को नहीं कह सकते? यदि तुम हजारों नहीं दे सकते, तो क्या विधवा जैसा यत्किंचित् धन भी नहीं दे सकते? कम से कम इतना तो तुम कर ही सकते हो। राम तुमसे कुछ अपने लिए खाने को नहीं चाहता, राम तुमसे अपने लिए कोई कपडे नहीं माँगता। नष्ट हो जायँ ये ओंठ, यदि ये निज के स्वार्थ के लिए कुछ माँगे। यह काम तुम्हारा भी उतना ही है जितना राम का। राम ठीक उतना ही अमेरिकन है जितना भारतीय। विस्तृत विश्व मेरा घर है और भलाई करना मेरा धर्म है (The wide world is my home & to do good is my religion)। ईसा राम के हृदय के लिए इतना ही

नगीची और प्यारा है जितना कृष्ण। राम के लिए बुद्ध भी वैसा ही अपना है जैसा शंकर। राम इस या उस सम्प्रदाय का नहीं है। राम तुम्हारा है, सत्य तुम्हारा है। सत्य के नाम पर, न्याय के नाम पर, मनुष्यता और अमेरिकन स्वाधीनता के नाम पर, तुमसे आगे बढ़ने को, भारत की वेदना को अनुभव करने के लिए कहा जाता है। तुम क्या करना चाहते हो? कुछ लोग कलम से सेवा कर सकते है, कुछ वाणी से सहायता पहुँचा सकते हैं, कुछ अपने मित्रों से इस बारे में बात चीत कर सकते हैं, और कुछ इस विषय पर व्याख्यान दे सकते है। कुछ शारीरिक श्रम से सहायता कर सकते है, कुछ अपनी थैली से मदद कर सकते हैं। अब कहो, अमेरिकनो कहो, किस तरह पर तुम इस व्रत को ग्रहण करने को उद्यत हो? किस तरह तुम सहायता करोगे? धनिकों को धन देना चाहिए, शूरवीरों को शिक्षकों की हैसियत से आगे बढ़कर हिन्दुस्तान के लोगों में, नीच जाति के अन्त्यजों में काम करना चाहिए। वाणी के (gifted talkers) वरपुत्रों को इस मामले पर अपने धनी मित्रों से बातचीत करनी चाहिए। समाचार पत्रों को लेखनी से इस पक्ष को ग्रहण करना चाहिए। जो सहायता करने को हैं और सत्य की सच्ची लग्न जिनमें है, जो अपने आत्मा को प्यार करते हैं, उन सबसे राम के पास आने और अपने नाम तथा पते लिखा देने की प्रार्थना की जाती है, अपने ही हाथ से वे लिख दे कि वे किस तरह पर सहायता करने को राजी हैं। यदि वे कोई रकम जमा करना चाहते है, तो अमेरिकन संरक्षकों के हाथ में रुपया दे दिया जायगा। तुम्हारे अपने अमेरिकावासी ही उस रुपये को रक्खेंगे। यदि तुम आकर दूसरे तरीकों से सेवा करने के लिए अपने को अर्पण करना चाहते हो, तो ऐसा कर डालो जिससे हम विधिपूर्वक काम शुरू करने का निश्चित प्रबंध कर लें। बोलो, तुम क्या करने को राजी हो? भारतवासियों की ओर से अमेरिकनों के प्रति यह राम की विनय है। निष्काम-भाव से राम यह

विनती करता है। राम का इससे कोई व्यक्तिगत सरोकार नहीं है। राम कहीं भी हो स्वाधीन है। राम किसी तरह भी बँधा हुआ नहीं है, बन्धन में नहीं है, सब लोक राम के हैं। राम सब कहीं रह सकता है। किन्तु देखो, भारत तुम्हारे अपने पैर है। यदि तुम सिर हो तो चरणों की उपेक्षा न करो। यदि पैर जख्मी और पीडित है, तो तुम लड़खड़ा कर गिर पड़ोगे। भारतवासियों के रूप में ईश्वर ही तुम्हारे पास भूखा खड़ा है, उसे खिलाओ। हिन्दुओं के रूप में ईश्वर तुम्हारे पास नंगा आया है, उसे कपडे पहनाओ। उन लोगों के रूप में ईश्वर तुम्हारे पास व्यथित और जरूरत का मारा आया है, उसकी खबर लो। ये लोग इसीलिए अन्धकार और यातना में पड़े हुए है कि तुम दान और प्रेम के श्रेष्ठ गुणों से अपने को धन्य कर सको। वे इसीलिए गिरे हुए हैं कि तुम्हारा उद्धार हो। अपने ग्रहों को धन्यवाद दो कि तुम्हें अपनी उदात्त वृत्तियों (उच्च भावों) और श्रेष्ठ प्रयत्नों के अनुशीलन का अवसर प्राप्त हुआ है। अवसर से लाभ उठाओ, और प्रसन्नतापूर्वक, हँसी-खुशी, उन्हें सहायता पहुँचाओ।

अमेरिका, चीनियो, जापानियो, लाल हिन्दुस्तानियो (Red Indians) और नीगरो लोगों को शिक्षा दे रहा है। पशुओं के प्रति भी निष्ठुर व्यवहार रोकने में कोई कसर नहीं उठा रखता है। ऐ अमेरिका, हिन्दू भी तेरे अपने ही मांस और रक्त हैं, आर्य जाति के हैं, बड़े ही कृतज्ञ और स्नेही हैं। स्वामिभक्त हैं, इनकी उपेक्षा न करो।

नोट—यह व्याख्यान पहले पहल अमेरिका में प्रकाशित हुआ था, तत्पश्चात् सन् १९०३ के अन्त में भारतवर्ष के प्रसिद्ध पत्र इण्डियन मिरर (Indian Mirror, Calcutta) में प्रकाशित हुआ। भारतवर्ष की राजनैतिक दशा में तब से अब बहुत परिवर्तन हो गया है। इसलिए स्वामीजी के कुछ कथन आजकल बिलकुल ठीक नहीं बैठते है, परन्तु मूल व्याख्यान कायम रखने के लिए उसे जैसे का तैसा दिया गया है। सम्पादक